नैतिक
सामाजिक/राजनैतिक
संगठन

(सांस्कृतिक पुनरुत्थान द्वारा समाज/राष्ट्र निर्माण)

लेखक

रामाश्रय तिवारी

पूर्व उप परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

****

नोट- इस पुस्तक में दिए गए विचार पूर्णतः व्यक्तिगत हैं । इसमें निहित राजनैतिक अंश किसी संस्था से सम्बद्ध नहीं है।

****

प्रथम संस्करण - 23/11/2018

© लेखक रामाश्रय तिवारी

पूर्व उप परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश

प्रकाशकः
रामाश्रय तिवारी

117 सी, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

मूल्य : 25/-

अनुक्रमणिका

1. भूमिका 1

2. कार्ययोजना 3

3. प्राथमिक सिद्धांत तथा उद्देश्य 5

4. प्रेरक संदेश (फेसबुक पर लेखक द्वारा प्रकाशित) 12

॥श्री गणेशाय नमः॥

1

भूमिका

समाज का सबसे महत्वपूर्ण अंग शासन है। राजनीति के द्वारा शासन की व्यवस्था होती है। शासन से समाज एवं समाज से शासन व्यवस्थित बने रहते हैं। सामाजिक संगठन के विषय में चिंतन करते समय राजनैतिक पक्ष का चिंतन स्वभाविक है।सामाजिक व्यवस्था पर चिंतन करने के साथ राजनीती के विषय में भी उल्लेख करने का उद्देश्य यह है कि यथा संभव सामाजिक कार्यकलापों के विषय में उपाय सोचे जायँ, किन्तु उन उपायों को कार्यान्वित करने में राजनैतिक बाधा या दुर्बलता होने पर उनका भी निराकरण किया जाय। शुद्ध रूप से राजनैतिक कार्यक्रम चलाने वाले सक्षम व्यक्ति इसके राजनैतिक अंश का भी आदर करेंगे।

सत्तारूढ़ दल को नियंत्रित करने, शासन को जनाकांक्षा के अनुरूप रखने तथा शासन के द्वारा हो रहे अधिकारों के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने के लिए सामाजिक कार्यकर्ता व चिंतक पहले समर्थ होते थे। बहुत पहले तो तपस्वी ब्राह्मणों के भय से राजा अपने राजधर्म का उचित निर्वाह करता था। बाद में सत्याग्रह आदि विधियों से शासन को प्रभावित किया जाने लगा। इस समय सत्तामद को दूर करने के लिए पुराने तरीके नहीं कारगर हैं। सत्ता पाने पर अंधे और बहरे होकर शासन चलाने की प्रथा चल पड़ी है। ऐसी स्थिति में शासन को संवेदनशील और अपने सही मार्ग पर रखने के लिए विरोधी राजनैतिक दल ही सक्षम है। विरोधी दलों में नैतिकता का अभाव और भ्रष्टाचार होने के कारण वे जनता के विश्वास पात्र नहीं हो पाते है। वे अपने को या अपने दल को देश से अधिक महत्व देते हैं। झूठे वादे तथा पाखंड के द्वारा प्रभावित करके सत्ता में आनेपर सभी दल अविश्वसनीय सिद्ध हो चुके हैं।

सामाजिक संस्थाओं का शासन पर कोई प्रभाव नहीं रह गया है वे शासन के अनुकूल रहकर धनर्जन के स्रोत हैं या निष्प्रभावी हो गयी है। उन्हें राजनीति से मुक्त किया जाना चाहिये।

प्रच्छन्न परतंत्रता से बचना आवश्यक है। आज अर्थ और काम मूलक प्रवृत्तियों से आक्रांत भारतीय जनमानस पुनः गुलाम हो कर अपनी अस्मिता को भूल रहा है। धर्म के अभाव में अर्थ और काम पतन के कारण हैं। असंतोष को समाप्त करने के लिए जो क्रांति होगी वह धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष का संबल होगी या एकदम तानाशाही में जाएगी। तानाशाही से बचने के लिए धर्म और संस्कृति को स्मरण करने हेतु उपाय यहां प्रस्तुत हैं।

ऐसी स्थिति में एक ऐसा सामाजिक संगठन आवश्यक है, जो सत्ता का लोलुप न हो, भ्रष्टाचार मुक्त हो, नैतिकता, योग्यता एवं न्याय को ही अपना संबल मानता हो। ऐसा समाज सत्तारूढ़ दल के अच्छे कार्यों का समर्थन तथा बुरे कार्यों का विरोध करते हुये, उसे नियंत्रित करने का काम करेगा। यदि जनता इस में विश्वास रखने लगेगी तो सभी दलों की अच्छी बातें लेकर मूल में नैतिकता,योग्यता एवं न्याय को स्थापित करके शासन सत्ता भी चलाने की व्यवस्था देगा। वर्तमान में शासन को नियंत्रित करने तथा भविष्य में सुराज्य की स्थापना के उद्देश्य से नैतिक, राजनैतिक/ सामाजिक संगठन की स्थापना आवश्यक है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयोगी साहित्य की आवश्यकता सर्वप्रथम है। मूलभूत सिद्धांत / सुझाव की सूची कार्ययोजना तथा इनके समर्थन विचारों एवं लेखों को यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

रामाश्रय तिवारी
पूर्व उपपरिवहन आयुक्त
उत्तर प्रदेश

2

कार्ययोजना

नैतिक, सामाजिक/राजनैतिक संगठन दो स्तरों पर कार्य करेगा-

प्रथम *व्यक्ति, परिवार और गांव (मुहल्ला) को इकाई मानकर संस्कार एवं नैतिक शिक्षा का प्रचार करना। इसके लिए कार्यकर्त्ता सदस्य स्वयं जाकर अपने संगठन से प्रकाशित साहित्य के आधार पर बालकों तथा अभिभावकों को प्रेरणा देगा। हाईस्कूल स्तर तक के विद्यालयों में भी जाकर यह शिक्षाएं दी जाएंगी।*

द्वितीय *सर्वसाधारण जनों को संगठन के विषय में अवगत कराना उसके साहित्य को उपलब्ध कराना। किसी राजनैतिक दल में न रहकर शुद्ध लोकनीति के पालन एवं प्रचार करने की प्रेरणा देना आदि कार्यों के लिए कुछ समय देने वाले सदस्यों को बनाना प्रथम आवश्यकता है। यह द्वितीय स्तर का कार्य वृहद् स्तर पर करने पर देश-सेवा होगी। लोकनीति को सर्वोपरि सत्ता बनाने के लिए ईमानदार व्यक्तियों की आवश्यकता है। राजनीति को राजधर्म मानकर उसका प्रयोग किया जाय। इसके लिए बाध्य किया जाय। ऐसा लोकनीति के प्रबल होने पर संभव है।*

आज की राजनीति या कूटनीति विदेशों में प्रयोग की जा सकती है, क्योंकि ऐसा ही पहले से होता आ रहा है। धर्मनीति से सीमा और स्वाभिमान की सुरक्षा न होने पर हर संभव नीति अपनाई जा सकती है। युद्ध और भेद की नीति इसके लिए है।

अपने देश में लोकनीति और राजधर्म का ही शासन रहेगा। लोक की आकांक्षा को पूर्ण करने पर शासन, संविधान, कानून सब कुछ बदला जा सकता है। इस उद्देश्य से कार्य किया जायेगा।

विस्तृत स्तर पर लोगों को स्वधर्म पालन, ईमानदारी, नैतिकता, सत्य, देश-सेवा आदि आदर्श नागरिक के गुणों के स्वीकार करने का लाभ समझाया जायेगा।

लोक एवं परलोक दोनों का महत्व समझने पर ही स्वाभाविक रूप से सदाचार का पालन संभव है। ऐसा करने का प्रयास होगा।

संगठन के मुख्यालय पर कार्यकर्ताओं और प्रबुद्ध व्यक्तियों तथा विद्यार्थियों को अपनी बातें समझाने के लिए कार्यशाला चलायी जायेगी। समय-समय पर यह कार्य होता रहेगा। एक दिन प्रथम स्तर का प्रशिक्षण तथा दूसरे दिन द्वितीय स्तर का कार्यक्रम होगा। इस तरह दो दिनों की कार्यशाला की योजना चलायी जायेगी। कार्यशाला में बालोपयोगी नैतिक शिक्षा तथा संगठन से संबंधित इस ग्रंथ का भी प्रचार किया जाएगा एवं अन्य आवश्यक शिक्षाएँ भी दी जाएंगी।

प्रत्येक जिले में उपयुक्त स्थानों पर प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना करके मुख्यालय की तरह का कार्यक्रम चलाकर कार्ययोजना को विस्तृत क्षेत्र में चलाया जायेगा।

- सक्रिय तथा समर्थक सदस्यों को जोड़नासंगठन की कार्यकारिणी समिति का गठन करके उसके पदाधिकारियों द्वारा यह कार्य किया जायेगा। धन की व्यवस्था के लिये कार्यकर्ताओं और समर्थकों द्वारा प्राप्त पवित्र धन से ही काम चलाया जाएगा। कार्यकारिणी में संचालक, उपसञ्चालक, सचिव तथा सदस्य स्तर के लोग होंगे। इसकी नियमावली तथा गठन का कार्य किया जाएगा। यथासमय नवीन कार्यकारिणी की स्थापना होती रहेगी।
- सक्रिय तथा समर्थक सदस्यों को जोड़ना
- साहित्य- लेखन तथा प्रचार करना
- कार्यक्रम का संचालन, प्रचार केंद्र-उपकेंद्र की व्यवस्था करना
- संगठन के निर्णयों से प्रभावशाली व्यक्तियों एवं शासन को अवगत कराना।

उपर्युक्त पांच स्तरों पर कार्यवाही, गाँव से आरंभ करके देश तथा समस्त मानव समाज के कल्याण हेतु करना कार्ययोजना है।

3

प्राथमिक सिद्धान्त तथा उद्देश्य

1. पद एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए योग्यता को ही आधार माना जाय। उस कार्य या विषय के लिए योग्यता का निष्पक्ष निर्धारण किया जाय। जिससे पारदर्शिता बनी रहे।
2. आरक्षण किसी पद या प्रतिष्ठा के लिए नहीं होगा। प्रशासनिक, शैक्षणिक, गुणात्मक आदि सभी दृष्टियों से आरक्षण से हानि हुयी है। इससे भ्रष्टाचार होता है तथा कार्यकुशल लोगों में कुंठा एवं शिथिलता उत्पन्न होती है।
3. पूर्व पैरा के प्राविधान के विकल्प के रूप में आरक्षण की व्यवस्था केवल ग्रुप डी (चतुर्थ श्रेणी) की नौकरी में एक परिवार में एक बार की जा सकती है।
4. जाति, सम्प्रदाय या लिंग के भेद से कोई योग्य व्यक्ति लाभ या हानि नहीं पायेगा। इससे जातिवाद का विकृत रूप नहीं होगा तथा समाजिक समरसता बनेगी। जाती से कोई दलित या पिछड़ा नहीं कहा जायेगा।
5. देश की सुरक्षा एवं प्रतिष्ठा के लिए कानून के द्वारा एवं पर्याप्त बजट प्रदान करके विशेष प्रयास होगा। वाह्य एवं आंतरिक दोनों तरह की सुरक्षा के लिए धन की व्यवस्था प्राथमिकता के आधार पर होगी।
6. सामाजिक समरसता कानून के समक्ष समभाव, समान आचारसंहिता जैसे समतामूलक कार्यों को प्राथमिकता से किया जायेगा।
7. धार्मिक या जातीय आधार पर विवाद करने वालों पर शासन की विशेष दृष्टि होगी।
8. स्वतंत्रता व्यक्ति का अधिकार होगा किन्तु सामाजिक विघटन करने वालों या संस्कृत समाज को विकृत करके आदिवासी स्थिति लौटाने वालों की स्वतंत्रता पर नियंत्रण होगा।
9. नारी को भारतीय संस्कृति के अनुसार बढ़ाने एवं सुरक्षित रखने का प्रयास होगा। योग्यतानुसार उसे सभी अवसर दिए जाएंगे किन्तु प्रदर्शन एवं विदेशी अनुकरण को रोका जायेगा।

10. परिवार एवं पारिवारिक व्यवसाय को सुदृढ़ करने की व्यवस्था की जाय।
11. छोटे स्तर के व्यवसाय के लिए विशेष सुविधा एवं छूट दी जायेगी जिससे नवयुवक खाली हाथ न रहें।
12. शिक्षा का अधिकार साक्षर बनाने तक ही रहेगा। आगे योग्यता एवं अभिरुचि के अनुसार ही शिक्षा की व्यवस्था होगी। इसमें व्यय किया जायेगा किन्तु सदुपयोग की व्यवस्था की जायेगी।
13. शिक्षा में गुणात्मकता पर बल होगा। विद्यालयों की संख्या बढ़ाकर शैक्षणिक प्रगति दिखाने से कोई लाभ नहीं है। इससे शिक्षा का स्तर गिराकर भारी क्षति हो रही है।
14. विद्यार्थी को राजनीति की शिक्षा दी जायेगी तथा समाज एवं मानव धर्म को भी समझने के लिए प्रेरणा दी जायेगी। राजनैतिक दलों तथा तत्संबंधी कार्यों से विद्यार्थी विरत रहेगा। उसका कार्य केवल पढ़ना एवं योग्यता में वृद्धि करना होगा।
15. शिक्षा में माता-पिता के दायित्व को अधिक किया जायेगा जिससे अच्छे नागरिक बनने की नींव पड़ सके।
16. अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध व्यापार उद्योग धन्धा,यातायात के साधन विकास संबंधी कार्यों के लिए सामान्यतया अपनायी जा रही नीतियों में अधिक दखल देने की आवश्यकता नहीं है, प्रदर्शन के लिए कोई नयी योजना नहीं बनेगी।
17. सत्य, न्याय, ईमानदारी,विश्वसनीयता जैसे गुण जो राजधर्म की नींव है, उनका पोषण एवं संरक्षण किया जायेगा। पद,प्रतिष्ठा हेतु यही मानदंड है।
18. समाज में गरीब, अमीर एवं मध्यम कोटियों के लोगों की समस्याएं अलग अलग होती हैं। आर्थिक नीति में शासकीय सहायता के लिए पात्रता का आधार केवल गरीबी होगी।
19. गरीब को अपने पैरों पर खड़े होने के लिए सहायता दी जायेगी। स्थायी आर्थिक सहायता केवल असहाय अपाहिज कोटि के लिये होगा।
20. मध्यम वर्ग की पीड़ा को भी समझा जायेगा। महंगाई की मार का शिकार सबसे अधिक मध्यम वर्ग ही होता है। अतः महंगाई पर नियंत्रण रखा जायेगा।
21. विकास की गति के साथ महंगाई बढ़ाना पड़ता है। विकास की गति उतनी ही रहेगी जितनी की महंगाई पर नियंत्रण रखते हुये संभव होगी। भविष्य के लिए वर्तमान को बर्बाद नहीं किया जायेगा। दोनों का संतुलन आवश्यक है।

22. राजकीय सम्मानों की गरिमा एवं उनकी पहचान सुरक्षित करने के लिए विशेष ध्यान दिया जायेगा। पात्रता के आधार पर ही सम्मान दिया जाय। मरने के बहुत दिन बाद सम्मान देने की परम्परा से विवाद उत्पन्न होते हैं। अतः यह सब बंद होगा।
23. सामाजिक विषयों का स्तरीकरण उनके मूल्यों के आधार पर किया जायेगा। कला,मनोरंजन,अनुसन्धान,लेखन समाज सेवा, विज्ञान, देशसेवा, शान्ति व्यवस्था जैसे विषयों को महत्व के अनुसार स्तर निर्धारित करके उनके लिए अलग-अलग प्रकार के राजकीय सम्मान दिया जायेगा।
24. न्याय की व्यवस्था तथा शिक्षा दो विषय बहुत ईमानदारी एवं सच्चरित्रता की अपेक्षा रखते हैं। इन विषयों पर गुणात्मकता बढ़ाने के लिए हर संभव प्रयास होगा।
25. संसद एवं न्यायपालिका के कार्यों में एक दूसरे का हस्तक्षेप न हो यह कानून के द्वारा रोका जायेगा। कानून बनाने का अधिकार संसद के पास रहे। न्यायपालिका सुझाव दे सकती है, किंतु कानून और नीतिनिर्धारण नहीं करेगी।
26. संविधान में आवश्यक परिवर्तन करके अपनी नीतियों को स्थापित किया जायेगा।
27. संविधान सर्वोपरि होने पर भी संशोधन से उसकी विशिष्टता समयानुकूल होती है। अलिखित संविधान होना प्रजातंत्र की पराकाष्ठा है। परम्परावों और नैतिक मूल्यों के आधार पर शासन से इसका प्रयास किया जायेगा।
28. धर्म के नाम पर पाखंड द्वारा समाज की वंचना और श्रद्धा का दोहन करने वालों के विरुद्ध प्रभावी कार्यवाही की जायेगी। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध और उद्योगों में लिप्त धर्म गुरुओं के विरुद्ध कार्यवाही विशेष रूप से की जायेगी जिससे धार्मिक उन्माद न हो।
29. धनी धार्मिक संस्थाओं से अधिक से अधिक से कर वसूल कर उसे मानव कल्याण में लगाया जायेगा जो कि वास्तविक धर्म का लक्षण है।
30. संगठन में आर्थिक शुचिता पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। धन संग्रह करके नहीं रक्खा जायेगा। आवश्यकतानुसार चन्दा या सहायता मांगी जायेगी तथा विशेष रुप से समर्थकों के सहयोग से कार्य होगा। समर्थक, सदस्य, सक्रिय कार्यकर्त्ता तीन श्रेणी के लोगों से धन की व्यवस्था होगी।

31. धन, पद-प्रतिष्ठा तथा किसी ऐसी बात की उपलब्धि जिसके लिए योग्यता न हो, इन सब की सम्भावना न होने पर संगठन में प्रदूषण नहीं रहेगा।
32. वृद्धों की सुरक्षा तथा उनके अनुभव का लाभ लेने के लिए संयुक्त परिवार हेतु विशेष सहायता दी जायेगी।
33. संयुक्त परिवार तथा मूल भारतीय संस्कृति की मान्यताओं के पलान के लिए इसमें बाधक कानून एवं नियमों में परिवर्तन किया जायेगा। marriage act (मैरेज एक्ट), succession act (सक्सेसन एक्ट) जैसे कानूनों पर विचार होगा। ऐसे कानूनों की सूची बनाकर उसपर कार्यवाही की जायेगी।
34. सामाजिक संस्थाओं की स्वस्थ परम्परा रखते हुए उन्हें राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त किया जायेगा।शासन को जनता की आकांक्षाओ से अवगत कराने का कार्य वे ही करती है।
35. राजनीती का परिसीमन कयिा जायेगा जिससे परिवार गांव मुहल्ला और क्षेत्र के क्रिया कलापों में राजनैतिक विवाद और कटुता न हो सके। गांवों में विवाद रोकेने के लिए पंचायत राज में जिला और ब्लॉक स्तर ही रहे।
36. राजनैतिक चिंतन और क्रिया कलाप के लिए कुछ विशेष योग्यता होनी चाहिए। राजनीति को निङ्गल्लों का चारागाह न बनाया जाय। राजनीति रोजी रोटी का साधन न हो बल्कि लोक सेवा के लिए त्याग और बलिदान उसमें लक्षित हो। इन बातों के लिए राजनैतिक प्रशिक्षण और योग्यता की व्यवस्था की जायेगी। सादा जीवन, सदाचार और सत्यपालन इसके अनिवार्य तत्व हैं।
37. जनता को अपने गुणों से प्रभावित करने का प्रयास किया जायेगा। झूङ्ठे वादे और छल से तथा प्रचार माध्यमों से प्रलोभन मिलता है किंतु संतोष तो सत्य के क्रियान्वयन से होता है। ऐसी विश्वसनीयता पैदा की जायेगी।
38. बहुत सी सामाजिक संस्थाएं हमारे द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों के अनुरूप पहले से चल रही हैं। शासन की अनदेखी से उनका प्रभाव नहीं पड़ रहा है। इन संस्थाओं से सहयोग लेना तथा उन्हें राजनैतिक संरक्षण प्रदान किया जायेगा।
39. व्यक्ति की प्रतिष्ठा तथा लोकमत के आदर के साथ शांति-व्यवस्था एवं विश्वास राज्य का प्रमुख उद्देश्य है। लोक से बड़ी शक्ति कोई न बन जाय, इसकी व्यवस्था प्राथमिकता से की जायगी। नेता या गुंडाराज न होने पाये।
40. टीवी, मोबाइल के प्रयोग मनोरंजन के चैनल आदि जिनसे बच्चों और समाज में व्यभिचार और अपराध का सन्देश जाता है, उन पर कठोर नियंत्रण हो,

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को पुनः परिभाषित किया जायेगा।

41. लोक में प्रचलित संस्थाओं को गुण-दोष के विवेचनपूर्वक सबल बनाना।
42. लोक सर्वोपरि है। विधायिका,कार्यपालिका,न्यायपालिका सभी लोक के नीचे हैं। लोक ही इनका निर्माण करता है। संविधान भी लोक की इच्छा से बदला जा सकता है। एक दल द्वारा या कई दलों को मिलाकर 50% मतदान पक्ष में होने पर लोक की स्वीकृति मानी जाय और परिवर्तन हो सके। जो परिवर्तन करना हो उस उद्देश्य को घोषित करके चुनाव लड़ना आवश्यक है।
43. ग्राम पंचायतों के लिए आवंटित धन तथा उनके कार्यकलाप की सूचना हर ग्राम सभा में प्रदर्शित की जाय।
44. परिवार एवं गांव की इकाई बनाकर परिवर्तन की नींव डाली जायेगी। गाँवो को भ्रष्टाचार एवं गुटबंदी से मुक्त बनाने का प्रयास होगा तथा परिवार स्वधर्म के प्रति जागरूक बनेगा।
45. लिवइन की मान्यता, गर्भपात की वैधानिकता, नारी के लिए दोहरा उत्तराधिकार जैसे नियमों का अपाकरण करके भारतीय समाज के अनुसार समाज की स्थापना करना।
46. पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार अश्लील और असामाजिक उत्सव, वैलेंटाइन डे इत्यादि का विरोध करना।
47. सुरक्षा (वाह्य तथा आंतरिक), अनुशासन, न्याय, शिक्षा संस्कृति की रक्षा, सार्वभौम धर्म का प्रचार जैसे कार्यों को पूरी तरह करने के बाद ही जनकल्याण के नाम पर राजकीय धन का उपयोग किया जाय।
48. जन कल्याण के नाम पर वोट बैंक तैयार करना तथा टैक्स लगाकर महंगाई बढ़ाना तथा मध्यम वर्ग के लोगों को अत्यंत दुखित करने वाले कार्यों को बंद करना।
49. छूट या सब्सिडी देने की प्रथा बंद की जाय। मुफ्त में राशन व दैनिक जीवन के सामान देकर निकम्मों की फ़ौज वोट लेने के लिए न तैयार किया जाय। कुछ न कुछ काम करके ही मजदूरी दी जाय।
50. सबको मजदूरी या रोजगार देकर प्रत्येक हाथ को उत्पादन के कार्य में लगाने से ही विकास हो सकता है। मुफ्तखोरी बंद करके छोटा-बड़ा रोजगार देना ज्यादा हितकर होगा।

51. राजकीय कर्मचारियों, एम.एल.ए., एम.पी., जैसे पदों के लिए वेतन उतना ही दिया जाय जितना देश की आबादी में आय और व्यय का अनुपात बनता हो। दैनिक मजदूरी एवं मासिक वेतन में व्यावहारिक अनुपात होना चाहिए।

52. एम.एल.ए., एम.पी., जैसे पदों के लिए पेंशन की व्यवस्था समाप्त की जाय। वे समाज सेवा के लिए कार्य करें धन कमाने के लिए नहीं।

53. समाज में स्वतंत्र चिंतन की परम्परा विकसित की जायेगी। पार्टी, जाति,सम्प्रदाय,राजनैतिक लाभ (पद, प्रतिष्ठा,धन) आदि के संकीर्ण दायरे में रहकर न्याय-अन्याय,अच्छे-बुरे, आदि के चिंतन करने की क्षमता समाज में नहीं है। शिक्षा को भी इन्ही दुर्गुणों से प्रभावित किया जा रहा है। राजकीय कर्मचारी तथा उच्च पदस्थ लोग एवं धर्माधिकारी भी इन्ही पूर्वाग्रहों से ग्रस्थ हैं। स्वतंत्र/ निष्पक्ष चिंतक बनने की व्यवस्था / प्रेरणा दी जाय।

54. वर्तमान समय में न्याय ख़रीदा जा रहा है। धन खर्च करके बड़ा वकील करने पर प्रायः जीतना निश्चित हो जाता है। इस तरह न्यायालय और वकील मिलकर न्याय की दुकान चलाते हैं। धन के आभाव में न्याय पाना मुश्किल है। वकीलों की श्रेणी(A,B,C,D)योग्यतानुसार बना दिया जाय। एक पक्ष का वकील जिस श्रेणी का हो उसी श्रेणी का वकील दूसरे पक्ष का भी हो। सरकार की व्यवस्था से यह संभव है। न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर उनका वेतन अत्यधिक न करते हुए,सरकार त्वरित न्याय की व्यवस्था करने में सक्षम हो सकती है। त्वरित न्याय होने पर सत्य के होने की सम्भावना अधिक रहती है।

55. समाज में कार्य करने के साथ ही, नीतियों एवं सुझावों के कार्यान्वयन हेतु शासन को समय समय पर लिखना/ घोषणापत्र की प्रति प्रबुद्ध लोगों के समक्ष पहुँचाना यह सब सामाजिक कार्य माने जायेंगे।

56. किसी राजनैतिक संगठन का सदस्य होना अपने व्यक्तित्व को परतंत्र करना है। ये लोग सत्य का दर्शन करने में असमर्थ हो जाते हैं। नैतिकता को ही उद्देश्य मानकर निर्णय लेने में स्वतंत्रता बनी रहेगी।

57. राजकीय सम्मान या अनुदान लेने से परहेज किया जायेगा। योग्यता के आधार पर जो मिल जाय,उसी पर संतुष्ट रहा जाये। अपना हक लेने का प्रयास किया जायेगा।

58. धार्मिक और ऐतिहासिक चरित्रों को विकृत करके राजनितिक उद्योग में लाभ न लिया जाय।

59. हिन्दू की पहचान धर्मशास्त्र,रामायण,महाभारत तथा परम्पराओं के आदर से है। संस्कृति इन्ही में है।
60. संस्कार,शिक्षा और स्वधर्म का प्रचार मुख्य साधन हैं। इन्ही से जन- जागरण और स्वाभिमान का उदय करना साध्य है।
61. देश,राष्ट्र तथा राज तीनों को मिलकर अर्थ कहा जाता है। इन्ही को पढ़ने के लिए अर्थशास्त्र है। प्रजा- राष्ट्र, देश, राजधानी-राजसत्ता इन तीनों को सँभालने वाला राजा होता था। ये तीनों समाज (जनता) के लिए हैं। सामाजिक संगठन दुर्बल राजा को सबल बनाता है। नैतिकता,वृद्धसेवा परम्परा इसके लिए मार्गदर्शक है। अन्य बातें इन गुणों के होने के बाद ही उपयोगी हैं।
62. थाने में अधिक से अधिक F.I.R. लिखने का प्रोत्साहन दिया जाय। पुलिस की सक्रियता तथा स्थानीय लोगों द्वारा ही समझौते से F.I.R. का निस्तारण शीघ्रता से करते रहना प्रशासनिक कुशलता माना जाय। वैधानिक कार्यवाही, समझौता न होने पर की जाय। लोगों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहन मिले।

यह घोषणा पत्र प्रारम्भिक प्रारूप है। सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा,भ्रष्टाचार पर नियंत्रण एवं सामाजिक तथा सांस्कृतीक सुदृढकरण के लिए समय-समय पर उपस्थित विषयों को भी उद्देश्य में सम्मिलित किया जायेगा।

4

प्रेरक संदेश

(फेसबुक पर लेखक द्वारा प्रकाशित)

1. श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान, श्री भुवनेश्वरी पीठ बिहसड़ा मिर्ज़ापुर की स्थापना वर्ष 1981 में की गई, जो तब से विविध प्रकार के सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रमों का संचालन करती रही है, इसी संस्था के अन्तर्गत एक अंग के रूप में 'नैतिक सामाजिक संगठन' की स्थापना की गई है। इसका मूल उद्देश्य समाज को कर्तव्यबोध कराना तथा उसके संगठन को सुदृढ़ रखने हेतु विविध प्रयास करना है। इस संगठन द्वारा किये जाने वाले क्रियाकलापों की योजना बनाई गई है जिसको परिष्कृत करके निकट भविष्य में इस पेज के माध्यम से प्रसारित किया जाएगा। सद्यः मिर्ज़ापुर, इलाहाबाद, वाराणसी एवं भदोही जिलों में कुछ केंद्र स्थापित करके बालक, युवा,वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी के लिये देशकाल के अनुसार आचार, व्यवहार एवं विविध कर्तव्यों का बोध कराना, 4 नवंबर 2017 से, संगठन की स्थापना के साथ ही, आरम्भ किया गया है।

2. पद ही जिसकी प्रतिष्ठा काआधार है उसे अपने पद की गरिमा की रक्षा करनी चाहिए । प्रतिभा के आधार पर प्राप्त प्रतिष्ठा की बात ही भिन्न है । वह दुर्लभ है।

3. प्रतिष्ठा को मिथ्याचार द्वारा भी बहुत दिनों तक बचाया जा सकता है, किन्तु सदैव सुरक्षित रखने के लिए योग्यता आवश्यक है।

अयोग्य होने पर भी जिसके ऊपर प्रतिष्ठा लाद दी जाती है उसकेभाग्य और दुर्भाग्य दोनों साथ साथ उदित होते हैं, बलिपशु की तरह।

पद की गरिमा को दूषित करने पर पदच्युत किया जाना चाहिए। यह कार्य लोकनीति और सामाजिक संगठन के सशक्त रहने पर ही संभव है। शासन, मीडिया आदि को भी समाज का भय हो यह आदर्श स्थिति कही जाएगी। प्रबुद्ध लोग इसके लिए पहल करें। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों पर लोक का अंकुश न रहे तो कैसा लोकतंत्र?

4. श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान,श्री भुवनेश्वरी पीठ,बिहसड़ा,मिर्जापुर की स्थापना वर्ष 1981 में की गयी,जो तब से, विविध प्रकार के सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रमों का संचालन करती रही है । इसी संस्था के अंतर्गत, एक अंग के रूप में,' नैतिक सामाजिक संगठन' की स्थापना की गयी है । इसका मूल उद्देश्य समाज को कर्तव्यबोध कराना तथा उसके संगठन को सुदृढ़ रखने हेतु विविध प्रयास करना है । इस संगठन द्वारा किये जाने वाले कार्यक्रमों की योजना बनायी गयी है जिसको परिष्कृत करके निकट भविष्य में विभिन्न माध्यमों यथा पैम्फलेट, फेसबुक पेज इत्यादि से प्रसारित किया जायेगा । मिर्जापुर,इलाहाबाद, वाराणसी एवं सद्यः भदोही जिलों में, कुछ केंद्र स्थापित करके, बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी के लिए,देशकाल के अनुसार,व्यव्हार एवम विविध कर्तव्यों का बोध कराना,4 नवंबर 2017 से, संगठन की स्थापना के साथ ही आरम्भ किया गया है ।

आह्वान :-

फेसबुक पर दिनांक 30/12/2017 के सन्देश के संदर्भ में प्रबुद्ध लोगों से अनुरोध-

- विद्यार्जन की चार अवस्थाएं है-पढ़ना, सम्यक समझना,आचरण करना एवं प्रचार करना (अधीतबोधाचरण प्रचाराः)।
- अपने ज्ञान और अनुभव के द्वारा समाज को कुछ देकर,उससे उऋण होना धर्म है।
- प्रबुद्ध लोग ही माता-पिता को अपनी संतान को अच्छा मनुष्य बनाने के लिए उपाय बता सकते है.माता-पिता को शिक्षित किया जाय।

कुछ शिक्षणीय बातेंः-

- माता-पिता बाल्यावस्था में अपनी संतान के लिए कुछ समय अवश्य दे। उसे महापुरुषों की जीवनी सुनाये,ईश्वर में श्रद्धा रखने,बुरे काम तथा झूठ बोलने के कुपरिणाम आदि सदाचार की बातें बताये। अपने पैतृक काम के प्रति भी रूचि जागृत करे। जिससे बालक बड़ा होने पर कामचोर एवं आवारा होने से बच सके। योग्यतानुसार बड़ा ब्यक्ति भी बन सके।
- बाहरी तथा भीतरी दोनों तरफ की स्वच्छता के साथ प्रदूषण पर नियंत्रण करना सिखाया जाय।
- वृद्धो की सेवा करने,उनके अनुभवों को लेने के लिए उनके समीप बैठने की आदत बनाना।

- नारी अपने गृहकार्यों पर पहले ध्यान दे। वह उसकी जिम्मेदारी है-(अन्य कार्य अवसर मिलने या पति के आदेश पर करे)। लड़की अपनी सुरक्षा हेतु स्वयं भी शीलवती रहें । नारी का प्रमुख धर्म याज्ञवल्क्य स्मृति बताया गया है।

'संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी।
कुर्यात् श्वशुरयोः पादवंदनं भर्तृवत्सला॥'

अर्थात गृहोपयोगी सामानों को व्यवस्थित ढंग से रखने वाली , कार्यकुशल, प्रसन्न रहने वाली और कम से कम व्यय करने वाली, सास ससुर की सेवा करने वाली तथा पति से प्रेम करने वाली, होना स्त्री के लिए आवश्यक गुण है।

- संयुक्त परिवार की परम्परा को कायम रखना । इससे वृद्धों तथा कुल परम्परा की सुरक्षा होगी ।
- विभिन्न केंद्रों पर जाकर संगठन के कार्यकर्ता उपर्युक्त प्रकार के सन्देश देंगे । इस योजना को उचित समझने वाले महानुभाव भी इसमें उचित सहयोग देने का कष्ट करें तथा हमे भी सुझाव दें।

5. नैतिक सामाजिक संगठन के कार्य मूल रूप से दो प्रकार के हैं - प्रथम कार्य समाज के विभिन्न स्तर के लोगों को, विशेष रूप से बालकों को सदाचार तथा कर्तव्य का बोध कराना है। द्वितीय कार्य समाज को सुदृढ़ व प्रभावशाली करने के लिए सहयोग, विश्वास, सद्भाव आदि सामाजिक मूल्यों के प्रति जागरूक करना है। नैतिक मूल्यों की रक्षा,योग्यता और ईमानदारी को महत्व देना तथा पाखंड से दूर रहकर सत्य का सहारा लेना आदि इस समय बहुत दुर्लभ किन्तु महत्वपूर्ण है। इनके अभाव में कोई शासन सफल नहीं होगा।

भारत का विश्व गुरु होने का जो स्वप्न है वह वर्तमान नीतियों के रहते दुराशा ही है। भारत अपनी संस्कृति एवं प्राचीन विद्या तथा सामाजिक परिवेश का सहारा लेकर ही विश्वगुरु हो सकता है। संस्कृति, शास्त्र और परम्परा को नष्ट करने पर यहाँ कुछ भी नहीं बचेगा। विज्ञान, धन, खेलकूद आदि के विकास में बहुत लोग सदैव आगे रहेंगे। विकास की आँधी में पूंजी न उड़ जाय,यह ध्यान देने योग्य है। पूंजी के रहते ही विकास भी संभव है।

इन बातों के चिंतन और तदनुसार कार्य करने के लिए सामाजिक चेतना जाग्रत करना संगठन का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। राजनीति में असत्य का सेवन आवश्यक हो गया है। अतः उससे अलग रहकर,अपने आदर्शों को सम्मान देने वाले राजनैतिक दल को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। अपने संगठन के कुछ सामाजिक आदर्शों को आगे दिया जा रहा है ।

नैतिक सामाजिक संगठन का संकल्प समाज निर्माण के लिए उच्च मानवीय मूल्यों तथा भारतीयता को जाग्रत करना है। इसके लिए -

1. पद एवं प्रतिष्ठा,के लिए, अन्य सभी आधार छोड़कर, केवल योग्यता को वरीयता देना चाहिए। योग्य व्यक्ति ही जगद्गुरू हो सकता है। योग्यता में वृद्धि के लिए इसका सम्मान आवश्यक है।
2. आरक्षण से योग्यता की अवहेलना होती है। उससे जाति,सम्प्रदाय,क्षेत्र आदि को आधार बनाने वाले विभिन्न वादों का जन्म होता है। इससे सामाजिक विघटन होता है,जाति,विद्वेष एवं युद्ध तक की स्थिति देखी जा रही है। आरक्षित जाति के 1% से भी कम लोगों को फायदा होता है,शेष 99% से अधिक लोग बेवकूफ बनाये जाते है,वोट के लिए पाखंड होता है। इस तरह अनेक अवगुण आरक्षण में है।
3. आरक्षण से संविधान की भी अवहेलना हो रही है। इससे कोई लाभ न होने पर भी राजनैतिक लाभ के लिए अवधि बढ़ाना संविधान की मंशा के विपरीत है।
4. राजनीति को सीमित किया जाय। सामाजिक संगठन तथा गांव राजनीति से अलग रक्खे जाय। ग्राम प्रधान के स्थान पर अन्य ब्यवस्था की जाय जिससे गांवो में गुटबंदी न हो। गांव एक सामाजिक एवं प्रशासनिक इकाई रहे,इन्हें राजनैतिक इकाई न बनाया जाय। इससे गांवों में सद्भावना रहेगी।
5. शिक्षा में गुणात्मकता हो। हाई स्कूल के बाद की शिक्षा के लिए योग्यता की अनिवार्यता हो।अन्य लोगों को रोजी-रोटी के लिए प्रशिक्षित किया जाय।
6. विद्यार्थी को राजनीति से दूर रक्खा जाय।
7. राजकीय सम्मान राजनैतिक हित के लिए नहीं बल्कि सम्मान को सार्थक बनाने के लिए दिए जाय। अयोग्य को सम्मान देने पर महत्व समाप्त हो जाता है।कला,मनोरंजन,अनुसंधान,लेखन,समाजसेवा,विज्ञान,देशसेवा,शांति ब्यवस्था जैसे सभी विषयों के लिए अलग-अलग तरह के सम्मान दिए जाय,जैसे सेना में दिए जाते है। सबको एक तरह रखने में तरतम का भेद नहीं रह जाता है। कितना भी बड़ा अभिनेता,गायक या खिलाड़ी हो वह तिलक या भामा जैसे लोगों का सम्मान नहीं पा सकता है।
8. प्रत्येक गांव में एक नैतिक सभा का संगठन किया जायेगा। यह सभा गांव के विवादों को सुलझाएगी तथा नैतिक मूल्यों की शिक्षा देगी। गांव के प्रबुद्ध लोग

इसमें प्रमुख बनाये जायेंगे। इससे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगेगा ।

एकनिति बोधक श्लोक —

अपूज्या: यत्र पूज्यन्ते पूज्यानामवमानना ।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं मयम्॥

6. बुद्धि ही मनुष्य का अमूल्य धन है। इस धन की भी भोग, दान और नाश होना यह तीन गतियाँ हैं। बुद्धि से प्राप्त ज्ञान/चिंतन को रुपयों के लिए देना 'भोग' है तथा समाजसेवा के लिए देना 'दान' है, दोनों के न करने पर 'नाश' अवश्यम्भावी है। बुद्धिमान, विद्वान एवं चिंतक व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे अपनी बुद्धि से लोगों को लाभान्वित करें। यह सबसे बड़ा दान है। समाज का ऋण सभी के ऊपर होता है क्योंकि मनुष्य सबकुछ इसी में रहकर प्राप्त करता है। समाज से उऋण होने के लिए सत्य, न्याय, सदाचार, स्वधर्म आदि मूल्यवान गुणों के प्रचार/प्रशिक्षण में कुछ समय का दान अवश्य करना चाहिए। असत्य, अन्याय, असंगत एवं अनीतिपूर्ण बातों का विरोध करने में शारीरिक रूप से नहीं, तो कलम या वाणी से ही क्रियाशील रहना चाहिए। भय, लोभ, प्रमाद, आलस्य, निराशा आदि के कारण समाज को कुछ भी न देने वाला व्यक्ति बुद्धिमान होने पर भी पापभागी माना जायेगा।

सामाजिक संगठन जो नीतिसम्मत कार्य कर रहे हैं, उनको सहयोग देना तथा समर्थ लोगों को नैतिक मूल्यों पर आधारित राजनैतिक कार्य करने की शिक्षा/प्रेरणा देना भी बहुत बड़ा बौद्धिक योगदान है। बुद्धि-वैभव को सार्वजनिक हित में लगाना महापुरुषों का लक्षण है, इसी आदर्श को संत तुलसीदास ने भी प्रतिष्ठित किया है यथा-

'कीरत भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई॥'

उपर्युक्त सार्वभौम सत्य पर सामयिक टिप्पणी-

श्रीभुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान द्वारा संचालित नैतिक सामाजिक संगठन के परिप्रेक्ष्य में उपर्युक्त विचार की सार्थकता है। इस दृष्टि से संगठन के विषय में प्रकाशित कुछ तथ्यों के आधार पर कार्यवाही तथा संगठन के एजेंडा को कार्यान्वित करने में सहयोग करना विचारकों को यशस्वी बनाएगा तथा संगठन को प्रोत्साहन मिलेगा। विचारों के प्रचार के लिए सहमति, सुझाव, सक्रिय प्रयास आदि विधाएं हैं। भावनात्मक समर्थन के प्रतीक के रूप में तन-मन-धन से अल्प सहयोग भी दे कर संगठन को संजीवनी शक्ति देना भी इस संस्था के विकास में सहायक होगा।

7. मनुष्य के समूह तथा उसके संगठनों के समूह से समाज बनता है। बुद्धि के वरदान से मनुष्य ने समाज एवं संस्कृति बनाया है। पशुओं के समूह को समज कहते हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना करने पर इस पृथ्वी पर समज भी नहीं बचेगा क्योंकि मनुष्य की विनाशकारी बुद्धि पूरी सृष्टि को समाप्त करने में सक्षम है।

वर्तमान समय की वैश्विक समस्याओं तथा अपने देश की व्यवस्था एवं उसकी भूमिका का आंकलन करने पर कुछ संयम और सत्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो गया है। संयुक्त राष्ट्र संगठन में पाँच सशक्त लोगों को वीटो का अधिकार है। अन्य को क्यों न हो? इसका कारण यही है कि शक्तिशाली के नियंत्रण में सबकुछ अब भी है। मात्स्यन्याय अब भी प्रवर्तित है। मदान्ध एवं अर्थ को ही सबकुछ मानने वाले देशों को शिक्षा देने के लिए भारत को अंधी दौड़ में शामिल नहीं होना चाहिए। विश्वगुरु होने के लिए संयम एवं अपने मूल गुणों के विकास की आवश्यकता है। सशक्त होना जरूरी है किंतु इसका प्रदर्शन बुरा है। बुद्धिमान चिंतकों ने कहा है-

'क्यों इतना आतंक, ठहर जा ओ गर्वीले,
जीने दो सबको सुख से फिर तुम जी ले'
'मतयो यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति वानराः।
शास्त्राणि यत्र गच्छन्ति तत्र गच्छन्ति ते नराः॥'

सामाजिक परंपरा एवं मूल्य प्रकृति के नियमों के अनुकूल होने पर लोगों में परस्पर विरोध की भावना नहीं होती है। नैतिक एवं व्यावहारिक मूल्यों के विषय में भी यही आवश्यक है। प्राकृतिक नियम या मानवीय मूल्यों को उल्टा करने पर प्रकृति का कोप हो जाता है। यही बात चरक संहिता के जनपदोध्वंस प्रकरण में लिखी गई है। इकोलॉजी के नियम भौतिक, व्यावहारिक एवं मानसिक सभी जगहों पर लागू होते हैं। पर्यावरण से छेड़खानी करने से विश्वविनाश की स्थिति उत्पन्न हो गई है तथा मूल्यात्मक छेड़खानी से सांस्कृतिक विप्लव एवं सामाजिक असंतोष, अशांति, असहयोग, अविश्वास आदि व्याधियां उत्पन्न हो रही हैं।

इन तथ्यों के आधार पर सामाजिक एवं राजनैतिक संरचना करना समय की अनुपेक्षणीय माँग है। नैतिक सामाजिक संगठन द्वारा इनको ध्यान में रखते हुए, नियम प्रवर्तित एवं प्रचारित किये जा रहे हैं।

'ऊर्ध्व बाहुः विरोमेष न च कश्चित छृणोति माम।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥'

8. नारीसशक्तीकरण के नाम पर उसे यूरोपीन या अमेरिकी महिला बनाने का प्रयास हानिकारक है । अरबी या तालिबानी महिला बनाना भी अनुचित है । उसे भारतीय महिला के रूप मे प्रतिष्ठित करना सर्वोत्तम है ।पिता पति या पुत्र के सँरक्षण में ही नारी की मर्यादा है। अन्यथा सेना भी सुरक्षा नहीं दे सकती है। यह अब भी सत्य है कि 'पिता रक्षति कौमार्ये, भर्ता रक्षति यौवने, पुत्रः रक्षति बार्धक्ये' आदि ।अधिकांश भारतीय नारियां इसी आदर्श को मानती हैं।
9. भारतीय समाज तथा शासन इस समय कीचड़ में फंसी गाय की तरह छटपटाहट में है। यह कीचड़ हमारे पूर्व नीतिनिर्धारकों ने आरक्षण, संरक्षण आदि भेदभाव के बीज डालकर उत्पन्न किया है। अब तो संविधान में विशेष परिवर्तन करके सभी तरह के भेदकारी प्राविधानों को समाप्त करके समतामूलक समाज की स्थापना अनिवार्य है। ऐसा करने पर सबको सुरक्षा और न्याय देना राज्य के लिए आसान हो जाएगा।

विदेश से प्रभावित चिंतकों ने जो बिगाड़ा है उसे भारतीय परंपरा से प्रभावित लोगों को ठीक करना चाहिए। अन्यथा सभी दिशाहीन एवं पार्टी तथा पद के लोभी माने जाएंगे। ऐसा होने से बचाया जाए क्योंकि-

'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः'

अर्थात

विवेकहीन होने पर सब तरह से पतन होता है।

10. आजकल दलितोत्थान की समस्या से निपटना कठिन हो रहा है। उनकी शिक्षा एवं आर्थिक स्थिति में सुधार ही उत्थान का साधन है। दलित कहे जाने वाले लोगों का उत्थान करना राजनैतिक ही नहीं सामाजिक जिम्मेदारी भी है। दलित होने का कारण बुद्धि की दुर्बलता ही है, इसी से आचार व्यवहार भी निम्न स्तर का हो जाता है। ऐसे लोग, क्रोध नहीं, दया और सहानुभूति के पात्र हैं। इनके ऊपर दया करने में भी सावधानी रखनी पड़ेगी। दयावश भस्मासुर न तैयार किया जाए। स्वतंत्र करने के बाद पुनः नियंत्रित करने में बड़ी समस्या होती है। अंत में ऊबकर 'पुनर्मूषको भव' ऐसा कहने से बचाया जाए।

दलित समस्या को विकृत रूप देने में उसी वर्ग के कुछ लोग, जो सम्पन्न एवं सशक्त हो गए हैं, जिम्मेदार हैं। ऐसे लगभग एक प्रतिशत लोग अपने ही वर्ग के निन्यानबे प्रतिशत लोगों को बेवकूफ बना रहे हैं। आरक्षण, एससी/एसटी आदि के नियम राजनैतिक स्वार्थ के कारण बनाये गए थे। अब यही नियम समस्या का रूप

धारण कर लिए हैं। यह ध्रुव नीति है कि राज्य न्याय और सत्य से चलता है, तुष्टिकरण से नहीं। देने वाले के हाथ में होने पर जो उदारता कही जाती है वही पाने वाले के द्वारा छीन लिए जाने पर शासन की कमजोरी मानी जाती है। देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ने वाले दस्यु कहे जाते हैं। दलित से विकसित बनाना अच्छी बात है किंतु उन्हें दस्यु बना देना बुरी बात है। उन्हे समाज का.उपयोगी अंग बनाना अभीष्ट है। अब भारतीय संविधान का परीक्षण आवश्यक हो गया है। दंड (न्याय) को दुर्बल होने से बचाया जाये क्योंकि 'दण्डं धर्म विदुर्बुधाः' अर्थात न्याय (धर्म) ही समाज को व्यवस्थित रखता है।

11. राजा दिलीपने रघु को सर्वविध समर्थ देख कर उन्हे राज्यभार देकर स्वयं वन मे रहने की इच्छा प्रकट किया। इस निश्चय को जानकर रघु ने दुखी होकर पिता से प्रर्थना किया कि वे मेरा त्याग न करें। आजकल नवयुवकों को आगे करने पर वृद्धों की दुर्दशा हो जाती है। इसलिय वृद्ध अपना अधिकार छोड़ने मे डरते हैं। परिवार मे वृद्धो से मुक्ति पाने की प्रथा बन रही है। राजनीति मे वृद्धों को अधिकारहीन बना दिया जा रहा है। यह विदेशी संस्कृति का प्रकोप है। भारतीय संस्कृति को चाहने पर रघु के चरित्र को आदर्श माना जायगा ।

12. किसी देशके लिए राजनैतिक स्वतंत्रता सूर्य का पोषक प्रकाश है तथा साँस्कृतिक स्वतंत्रता एवं सम्रिद्धि आह्लादक चाँदनी है। देश और समाज के लिए दोनो का महत्व है । अपने देश मे स्वतंत्रता की प्राप्ति के पूर्व सूर्यग्रहण था किन्तुसाँस्कृतिक चाँदनी की व्यवस्था मे समाज के सभी सदस्य तत्पर रहते थे।अतः साँस्कृतिक स्वतँत्रता सुरक्षित थी।स्वतंत्रता से सूर्यग्रहण समाप्त होने पर अपने देश का नेतृत्व विदेश से प्रभावित लोगों के हाथ मे चला गया।परिणामतः चन्द्रग्रहण आरँभ हो गया जो अबतक मे पूर्णग्रहण के स्तर तक पहुंच रहा है। हम साँस्कृतिक गुलामी झेल रहे हैं। आवश्यकता है कि भारतीय सँस्कृति के आदर्शों के विपरीत कानूनोँ एवम सम्वैधानिक प्रविधानो का पुनरावलोकन किया जाय।उद्योग सुरक्षा विग्यान के लिए विदेश से अनुकरण किया जाय।सँस्कृति के क्षेत्र मे अमेरिकी या यूरोपी न बनाकर हमें भारतीय रहने की स्वतंत्रता दी जाय।यह स्वतंत्रता भी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

13. 'न जातु कामान्न भयान्न लोभात्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।'
कामना भय या लोभ के कारण कुछ करना अधर्म है। आजकल निष्पक्ष चिन्तन का अभाव है।जाति धर्म दल सम्प्रदाय या राजनैतिक लाभ पद प्रतिष्ठा धन

आदि के बजाय सत्य व न्याय का पक्ष लेने वाला आज दुर्लभ है। यह राजनीति का प्रकोप है ।लोकनीति के सशक्त होने पर निष्पक्ष चिंतन होगा। तो सत्यप्रेमी लोगों को लोक को राजनीतिमुक्त करने का प्रयास करने की प्रबल आवश्यकता है। कल्किअवतार की प्रतीक्षा न करें।

14. राजकीय कर्मचारी राजकीय धन की चोरी उतनी ही कर सकता है जिससे प्रत्यक्ष प्रभाव न पड़े। मछली के पीने से नदी का पानी नहीं घटता है। कर्मचारी जनता से घूस लेता है, यह उसका मुख्य भ्रष्टाचार है। राजकीय धन का शोषण और दुरुपयोग राजनेताओं और मंत्री आदि द्वारा होता है। वे कर्मचारियों को नदी से नहर निकाल कर पानी बहाने की तरह, योजनाबद्ध तरीके से राजकोष को लूटने के लिए बाध्य करते हैं। लोभी या मजबूर कर्मचारी योजना को पूर्ण करता है। राजकीय धन अधिकांश राजनेता ले लेते हैं और कर्मचारी को फंस जाने के लिए जाल बना देते हैं। नेता शायद ही फंसता है किंतु मूर्ख कर्मचारी बदनाम और दंडित होता है।

सांसद, विधायक को मनचाही धन, वेतन, भत्ता, निधि देकर राजकोष की लूट हो रही है। सांसद/विधायक निधि का पैसा उसका और उसके दलालों का ही हो जाता है। अब इन लोगों को पेंशन दे कर अंधेर की जा रही है। यह भ्रष्टाचार है एवं देश की जनता के साथ धोखा है। भ्रष्टाचार की जड़ें संसद और विधानसभा में ही है। देशप्रेम जागृत हो सके तभी यह भ्रष्टाचार समाप्त होगा। नैतिकता के बिना कुछ भी संभव नहीं हैं। आशा है हमारे नेता देश को दुर्गति से बचाने के लिए इन बातों पर ध्यान देंगे।

15. शिक्षा की गुणवत्ता सामान्यतः गिरती जा रही है। शिक्षण संस्थाएं जो पूर्णरूपेण राजकीय नियंत्रण में हैं, वे राजनीति एवं राजकीय धन की हेराफेरी करने के लिए साधन बन गये हैं। जो शिक्षण संस्थाएं सामाजिक संस्थाओं के अधीन हैं, वे अर्थार्जन के स्रोत हैं। मान्यता आदि के नियंत्रण के कारण अवित्तपोषित संस्थाओं से राजकीय तंत्र खूब धन लेता है। डिग्री देने एवं धन वसूल करने का काम ही हो रहा है। इन सारी बातों को सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव हैं-

1. विद्यादान देने या बड़े स्तर पर विद्यालयों के संचालन करने की मान्यता आदि की प्रथा बंद किया जाए। विद्यालयों का संचालन करने को सभी स्वतंत्र रहें।

2. किसी तरह की परीक्षा लेने या प्रमाणपत्र देने के लिए वह विद्यालय ही अपने में स्वतंत्र रहे, इस प्रमाणपत्र का महत्व उसी संस्थान तक ही सीमित रहे।
3. शिक्षा पद्धित किसी पर थोपी न जाये, अपने ढंग से विषयों को पढने पढ़ाने दिया जाए।
4. शासन की तरफ से कुछ आदर्श विद्यालय चलाये जाएं जो शासन के अनुभवों/संदेशों का प्रचार करें तथा गुणवत्ता में प्रतिस्पर्धा पैदा करें। शोधकार्य जैसे खर्चीले कार्यों को वहां से संचालित किया जाए।
5. विद्यालयों में अनैतिक कार्य न हो इसके लिए प्रशासन का नियंत्रण बना रहे।
6. किसी डिग्री या पद के लिए परीक्षा में बैठने का सबको अधिकार हो, ऐसी परीक्षा की प्रक्रिया में पारदर्शिता की व्यवस्था की जाए, इसी से कर्मचारियों/अधिकारियों का चयन किया जाए।
7. अच्छा नागरिक बनने के लिए डिग्री की आवश्यकता नहीं हो बल्कि व्यवहार और योग्यता के आधार पर पद/प्रतिष्ठा देने की व्यवस्था की जाए। समाजसेवक या राजनेता होने के लिए समाज की गोपनीय सम्मति को आधार माना जाए।

16. राजतंत्र के शासन में राजा के कर्तव्यभ्रष्ट हो जाने पर, समाज के नायक उसपर नियंत्रण करते थे। नहुष, बेणु, घननंद जैसे राजाओं को ब्राह्मणों ने ही समाप्त कर दिया था। रूस, चीन, फ्रांस आदि के इतिहास में समाज का नियंत्रण राजा पर सिद्ध हुआ था।

प्रजातंत्र के विकृत होने पर नियंत्रण का कार्य कौन करेगा? प्रजा ही राजा होकर अधर्म में भी लिप्त हो जाये तो असाध्य स्थिति पैदा होती है। भारत जैसे कुछ देशों में यह समस्या गंभीर है। यहाँ सभी दल, जाति, सम्प्रदाय के कारण ईमानदारी को छोड़कर सत्ता की अंधी दौड़ में लगे हैं, जिससे हमारी बहुमूल्य स्वतंत्रता, सांस्कृतिक एवं आर्थिक रूप में नई गुलामी में पड़ने के सन्निकट है। ऐसी स्थिति में उदासीन द्रष्टा के रूप में रहने वाले वर्तमान विचारकों को ही कर्णधार बनने की आवश्यकता है, यही अंतिम आशा की किरण है। महामाया से प्रार्थना है कि देश के विचारकों को मोहनिद्रा से मुक्त करें। अपने देश तथा

संतानों से प्रेम तो सबको है, अतः स्वयम् भी निद्रा और प्रमाद छोड़कर समाज का उद्धार सभी मिलकर करेंगे, यह आशा वर्तमान समय में की जा सकती है।

17. अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधशः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तयानुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशावशात्मना।।

अर्थात विधाता की इच्छा अवश्यम्भावी होती है। उसकी इच्छा हो जाने पर सभी प्राणियों की चित्तवृत्ति भी उसी दिशा में ऐसी भागती है जैसे आंधी में तिनका उड़ता है। दुर्गासप्तशती में प्रार्थना की गई है- 'साचण्डिकाखिल जगत्परिपलनाय नाशाय चाशुभजनस्य मतिं करोतु'। महामाया जो विधाता की शक्ति है वह प्रार्थना करने पर उपासक की इच्छा के अनुरूप स्वयं भी इच्छा करती है। उसकी इच्छा से प्रार्थना का फल मिल जाता है। "More things are wrought by prayer than this world can dream of" ऐसा आंग्लभाषा के आध्यात्मिक कवि टेनीसन ने भी कहा है।

भारतीय संस्कृति, समाज, मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए तथा राजनैतिक सुनामी पर नियंत्रण के लिए प्रार्थना भी एक उपाय है। जो सक्रिय रूप से समाज निर्माण में योगदान नहीं कर पा रहे हैं, वे प्रार्थना के द्वारा महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। वर्तमान राजनीति में उंगली पर गिने जाने वाले लोग आचरण में पवित्र हैं, जो विवश भी हैं। जनता के प्रतिनिधि कहे जाने वाले लोग स्वयंभू प्रतिनिधि हैं। अपने तिकड़म, धन, बाहुबल तथा दलालों की सेना से वे विजय करते हैं, इसी सेना तथा ठेकेदारों के माध्यम से राजकीय कोष तथा समाज का शोषण भी वही करते हैं। राजकर्मचारियों को भय और लोभ में डालकर उन्ही से अपना काम कराते हैं। राजकर्मचारी तथा अधिकारी जीविका का साधन रखते हैं, अतः वे ईमानदार रह सकते हैं। राजनेता का वर्तमान प्रणाली में ईमानदार होना संभव नहीं है। नेता ही राजकर्मचारियों को बेईमान और बदनाम करते हैं। अब तो स्थिति यह है कि अपनी संस्कृति, समाज एवं देश की सीमा का भी सौदा करने वाले राजनीति में कार्यरत हैं। विरोध करने वाले को समाप्त करने की परंपरा चल गई है। हमारी प्राचीन संस्कृति को यह लोग निगल जाना चाहते हैं। 'पुरोडाश चह रासभ खावा'- तुलसी की यह वाणी इस प्रसंग में सही लग रही है। हवन सामग्री को गधा ही खाना चाहता है। इसे तो 'शापेन शरेण वा' (प्रार्थना या आंदोलन के द्वारा) रोकना ही पड़ेगा। अपना पूरा उद्यम, सारी शक्ति का प्रयोग इस दिशा में करना तथा हार मानने के पहले ईश्वर की शरण

में जाना उचित होगा। 'नाश्रान्तस्य सख्याय देवाः'-वेदवाक्य है, जिसका भाव है कि मनुष्य के परिश्रान्त होने पर ही देवता सहायता करते हैं। वह अमोघ शक्ति है। समाज की लौकिक शक्ति एवं प्रार्थना की दैवीय शक्ति दोनों के द्वारा राजनीति को पवित्र करना हमारा लक्ष्य है।

18. राजकीय तंत्र से न्याय तीन स्तरों से मिलता है। कानून और नियम बनाते समय संसद उचित नियमों को बना कर समस्त जनता के साथ न्याय कर दे, तो बहुत से विवाद वहीं समाप्त हो जायें। अनुचित नियमों का उल्लंघन अधिक होता है।कार्यपालिका नियमों के प्रवर्तन में न्याय कर दे, तो अधिकांश विवाद समाप्त हो जायें।इन स्तरों से न्याय मिलता रहे तो न्यायपालिका का कार्य कम हो जाय। न्यायपालिका समय से निर्णय न दे सके, तो वह न्याय नहीं है। न्यायपालिका ही नहीं बल्कि तीनों ही अंग (विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका) अन्याय के लिए उत्तरदायी है।जनता की भीड़ न्यायालय मे न पहुंचे, इसके लिए प्रथम दो तंत्रो की ईमानदारी आवश्यक है। अन्यथा तीसरा तंत्र भी बेइमान हो जाता है। यदि समाज प्रथम तंत्र को ठीक कर पाएगा तो आगे सब ठीक हो जायेगा। इस सत्य को समझने में कोई विरोध नहीं है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वतंत्रता की महत्वपूर्ण लड़ाई इसी लक्ष्य से आरम्भ किया जाय। यह स्वतंत्रता राजनैतिक स्वतंत्रता से भी अधिक महत्वपूर्ण है।

अक्षीणों वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः- अर्थात 'अर्थ से दुर्बल होने पर उतनी हीनता नहीं होती है, जितनी कि आचार से हीन होने पर होती है।' राजनैतिक परतंत्रता धनहीनता के बराबर असहाय बनाती है, किन्तु सांस्कृतिक और सामाजिक परतंत्रता तो असहाय ही नहीं बल्कि निंदनीय भी बनाती है।

19. आजकल परस्पर व्यवहार में कटुता तथा अविश्वास बहुत देखा जाता है। इस स्थिति के कारण सभी लोग दुःखी, अशांत और एक दूसरे से असंतुष्ट रहते हैं। इसका कारण है कि हम अपनी बड़ी से बड़ी गलती को एक मजबूरी तथा क्षम्य समझते हैं, किन्तु दूसरे की छोटी गलती को भी अक्षम्य मानते हैं। गीता के निम्नलिखित श्लोक को आदर्श मानते हुए हम उपर्युक्त सामाजिक समस्या का समाधान पा सकते हैं।

'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।12/15।।

भावार्थ यह है कि, अपने द्वारा किसी को कष्ट न होने दें तथा दूसरे के व्यवहार से दुःखी न महसूस करें अर्थात हम अपनी गलती का शोधन करें तथा दूसरे की गलती को क्षमा कर दें तो अनेक समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। उपर्युक्त के साथ ही हर्ष और उद्वेग से रहित होकर व्यवहार करने वाला व्यक्ति ईश्वर को भी प्रिय होता है।

उपर्युक्त बातें आध्यात्मिक साधना के लिए जितनी सत्य हैं उतनी ही सांसारिक व्यवहार में भी उपयोगी हैं।

20. पातञ्जलियोगशास्त्र के व्यासकृत भाष्य में लिखा है- 'उभयतोवाहिनी चित्तनदी, वहति पापाय वहति पुण्याय।' अर्थात चित्त (अंतःकरण) एक ऐसी नदी की तरह है जो दोनों तरफ बह सकती है, चित्तवृत्ति ही पाप के लिए तथा वही पुण्य के लिए भी कारक तत्व है। जब निरंकुश काम और अर्थ के लिए चित्तवृत्ति नियोजित हो जाती है तो अधोपतन का मार्ग बन जाता है। तपस्या द्वारा धर्म के मार्ग के अनुशरण करने पर काम और अर्थ दोनों नियंत्रित हो जाते हैं। उस समय उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है।

धर्म ही उत्थान का मार्ग है तो इसीके कारण परिवार से ले कर विश्व भर में अनेक तरह के संघर्ष नहीं उत्पन्न होने चाहिए, किन्तु ऐसा होता है। इसका कारण है कि धर्म के नाम पर अर्थ एवं काम की ही साधना की जाती है। इसी को मिथ्याचार कहते हैं। मिथ्याचार(पाखंड) ही व्यक्ति एवं समाज के लिए सबसे अधिक घातक है। धर्म की कसौटी यह है कि अर्थ और काम संबंधी स्वतंत्रता तथा विकास की अंधी दौड़ पर अंकुश लग जाए। अर्थ एवं काम पर धर्म का शासन हो जाए न कि धर्म पर अर्थ एवं काम का शासन चलने लगे। इस निकष पर परीक्षण करते हुए धर्मसापेक्ष शासन तथा सामाजिक व्यवस्था इस समय भी अपेक्षित है। यह बात व्यक्ति तथा समाज दोनों पर ही लागू होती है।

धर्म का महत्व समझाने के लिए प्रसिद्ध श्लोक है-

'आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

भाव यह है कि भूख, निद्रा, भय एवं काम की प्रवित्तियाँ तो पशु एवं मनुष्य सभी में स्वाभाविक है। धर्म ही मनुष्य को पशु से अलग करता है। मनुष्य अपनी संस्कृति और धर्म के विकास से पशुत्व से बहुत ऊपर उङ्कर देवत्व के सन्निकट पहुंच गया था। अब संस्कृति को भूलकर तथा धर्म से विमुख हो

कर पशुत्व को प्राप्त कर रहा है। यही चित्तनदी के दोनों तरफ बहने का उदाहरण है। धर्म का सही अर्थ समझते हुए पुनः मानव अपनी विशिष्टता को प्राप्त करे यह इस समय सृष्टि की रक्षा के लिए परम आवश्यक हो गया है। 'श्रीभुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान' अपने 'नैतिक सामाजिक संगठन' के माध्यम से उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयासरत है।

21. जिस पदार्थ पर किसी व्यक्ति का हक़ बनता है और उस व्यक्ति के लिए उपयोगी है, वह पदार्थ उस व्यक्ति को देना या दिलाना न्याय है। अपराधी को उचित दंड, यथा समय देना, तथा निर्दोष की रक्षा करना भी न्याय की परिभाषा के अंतर्गत हैं।

न्याय की इस परिभाषा के आधार पर आँकलन करने पर यही लगता है कि वर्तमान व्यवस्था न्याय की जगह अन्याय की स्थापना के लिए है। आरक्षण के द्वारा योग्य व्यक्तियों का हक़ छीनने तथा कनिष्ठ के द्वारा वरिष्ठ को नीचा दिखाकर अपमानित करने के नियमों से न्याय की जगह अन्याय की व्यवस्था स्पष्ट है। प्रथम दृष्टया निर्दोष व्यक्ति को भी अपमानित करने तथा गिरफ़्तार करने के नियमों से न्याय की हत्या की जा रही है।

पद, प्रतिष्ठा और पार्टी के लिए सभी राजनेता यह अनीति कर रहे हैं, इससे लगता है कि देश में भारी विपत्ति का आना सन्निकट है। जिन लोगों के बलिदान से राजनैतिक स्वतंत्रता मिली थी उनके वंशज अब भी हैं। वे अत्यधिक आहत हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक स्वतंत्रता लेना बुद्धजीवियों का सहज उद्देश्य है, इनके बिना राजनैतिक स्वतंत्रता बेमानी है। हम अन्याय एवं भ्रष्टाचार के कारण परतंत्र हो गए हैं। वास्तविक स्वतंत्रता आवश्यक है क्योंकि-

सर्वं परवशं दुःखं सर्वंआत्मवशं सुख़म्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुखयोः।।

बौद्धिक क्रांति में हिंसा या अराजकता का स्थान नहीं होता है। इन भ्रष्ट लोगों का नाश यदुवंशियों की तरह इनकी आपसी कटुता से ही हो जाएगा। राजसत्ता के लोभ में ये लोग एक दूसरे के विरुद्ध कुछ भी करने के लिए उद्यत हैं।

विचारवान लोग अपनी योग्यता के आधार पर जो पा जाते हैं उसी में संतुष्ट रहें। किसी राजकीय सहायता, पद या प्रतिष्ठा को पुरस्कार के रूप में स्वीकार न करें। वोट देने का अधिकार दूषित न करते हुए किसी को भी वोट देकर

पापभागी न बनें। नोटा (NOTA) के द्वारा अपनी भावना व्यक्त करें। तटस्थ दर्शक न रह कर, अनीति को हतोत्साहित तथा प्रकाशित करते हुए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने से हमारा विरोध प्रकट हो जाएगा। कम से कम इतना तो प्रत्येक विचारक कर सकता है। इससे भी अधिक क्रियाशीलता दिखाना प्रशंसनीय है। नैतिक सामाजिक संगठन का साथ दे कर इस दिशा में अपना सहयोग देने और समाज सेवा करने का यशभागी बनें।

22. न जातुकामान्नभयान्नलोभात् धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।

(महाभारत से)

कामना, भय, लोभ या जीवन की रक्षा के लिए भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। समान तत्वों का ही साथ हितकर होता है। सुख, दुःख तथा अविद्या नश्वर हैं, इनका साथ हो सकता है। जीव और धर्म दोनो नित्य हैं अतः इन दोनों का साथ स्थायी होना चाहिए।

अज्ञान के कारण मनुष्य धर्म को छोड़कर, अस्थायी लाभ के लिए अधर्म करता है। इस अज्ञान के कारण अधोपतन होता है। यह सभी व्यक्तियों के विषय में व्यक्तिनिष्ठ परिणाम है। समष्टिगत(समाज) के लिए भी यह सिद्धांत लागू होता है, जो बाद में भयंकर भी हो सकता है। जब बड़े बड़े लोग पद और प्रतिष्ठा के लिए अनीति के रास्ते पर चल रहे हों तो समस्त देश को इसका परिणाम भोगना पड़ता है, क्योंकि -

'एकः करोति पापानि फलं भुङ्क्ते महाजनैः।'

एक विशिष्ट व्यक्ति की गलती से पूरा समाज कष्ट पाता है, ऐसा देखा जाता है।

चरकसंहिता के जनपदोध्वंस प्रकरण में भी यही बात लिखी गई है। बड़े बड़े लोगों के असत्य एवं अधर्म के मार्ग पर चलने पर जनपदोध्वंस होता है, जिसमें सामूहिक विपत्ति आती है। वर्तमान समय में अपने देश की स्थिति ऐसी ही बन गई है, जिससे पूरे देश को कुपरिणाम भोगना पड़ेगा।

नैतिकता, सत्य तथा राजधर्म पर चलने के लिए प्रेरित करने हेतु नैतिक सामाजिक संगठन के उद्देश्यों का प्रचार हितकर होगा। इन सिद्धांतों को मानने के लिए समाज तथा शासन दोनों को तैयार करना समय की मांग है।

23. पूर्वजों और महापुरुषों के निर्मल चरित्र से सदाचार, धर्म, नीति, न्याय, स्वधर्म पालन आदि तथा शुद्ध ज्ञान एवं मोक्ष संबंधी शिक्षाएँ मिलती हैं। इन शिक्षाओं से सामाजिक व्यवस्था सुदृढ़ रहती है।

इन महापुरुषों को किसी जाति, सम्प्रदाय या स्थान विशेष से जोड़कर उन्हें सीमित करना समाज के लिए हानिकारक है। इससे उस महापुरुष की मर्यादा भी घट सकती है। इस दुष्चक्र से राजनैतिक या वर्ग विशेष का लाभ ले कर लोग समाज के साथ अन्याय कर रहे हैं। यही बात स्पष्ट रूप से यह है कि आदि पुरुष मनु से ले कर परशुराम, वाल्मीकि, व्यास, शंकराचार्य, तुलसी, रहीम, कबीर, नानक, रविदास, राणाप्रताप, शिवाजी, मालवीय, तिलक, गाँधी जैसे सैकड़ो महापुरुष भारतीय संस्कृति एवं स्वाभिमान के लिए सार्वजनिक रूप से मान्य हैं। ऐसे लोगों को किसी वर्ग या संगठन का पोषक बना कर उनका महत्व कम करना और समाज में विघटन उत्पन्न करना निंदनीय है। महापुरुषों के संदेशों के अनुसार ही संस्कृति एवं समाज का संगठन सुरक्षित रहेगा।

24. अहंकार दो तरह का होता है- नकली तथा असली (मिथ्या एवं सत्)। पहले नकली अहंकार की व्याख्या की जा रही है। यह अज्ञान से युक्त बुद्धि से पैदा होता है। सारी कामनाएं, राग-द्वेष इसी के क्षेत्र में आते हैं। मन इसका प्रमुख सेनापति है जो बहुत सूक्ष्म एवं बलवान होता है। अहंकार स्वयं प्रकट नहीं होता है। मनोभावना या उसके अनुसार किये गए कार्यों से ही अहंकार का स्वरूप प्रकट होता है। यह एक चोर सिपाही की तरह कार्य करता है। सिपाही ही चोरी करके, चोर का पता लगाने निकले तो चोर कभी नहीं पकड़ा जा सकता है। अपना कारनामा दिखाने के लिए किसी निर्दोष को पकड़ कर फँसा देगा, इसी तरह नकली अहंकार दूसरों को दोषी बनाता है तथा स्वयं साधु बना रहता है। अपनी गलती इसीलिए दिखाई नहीं पड़ती है। इसी अहंकार के प्रपंच में जीव पड़ा रहता है। इससे सावधान होना जीवन की साधना है।

असली अहंकार जानना कल्याणकारी है, इसी से स्वाभिमान, स्वानुभूति, स्वावलंबन, स्वतंत्रता आदि की प्राप्ति होती है। पूर्ण विकसित होने पर सदहंकार ही 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति करके मुक्त हो जाता है। मिथ्या अहंकार के निवारण तथा सदहंकार की स्थिति तक पहुँचने के लिए रमण महर्षि ने साधना पद्धति बताई है। 'मैं कौन हूँ'(नान यार) और उपदेशसार ये दो छोटी-छोटी

पुस्तकें इस विषय को समझने के लिए पर्याप्त हैं। महर्षि जी की साधनापद्धति-प्रश्नविधि है। अपने से ही पूछा जाय कि 'मैं कौन हूँ?' तो उत्तर में शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि उपस्थित होते हैं किंतु यह 'मैं' के रूप में नहीं, बल्कि 'मेरे' के रूप में दिखाई पड़ते हैं। ये सब मिथ्या अहंकार की संपत्ति हैं। शुद्ध अहंकार से यह असम्बद्ध हैं। मैं ही सब कुछ हूँ, मेरा संबंध नहीं, स्वरूप ही सर्वत्र व्याप्त है। यह भावना आने पर तुच्छ अहंकार का पतन हो जाता है तथा शुद्ध अहंकार प्रकाशित होने लगता है। यही जीवनमुक्ति है।

महर्षि जी के द्वारा लिखे गए उपदेशसार के निम्नलिखित श्लोक सारी बातें स्पष्ट करते हैं-

'अहमयं कुतो भवति चिन्वतः
अयि पतत्यहं निजविचारणम्।।19।।
'अहमि नाशभाज्यहमहंतया
स्फुरतिहृत्स्वयं परमपूर्ण सत्।।20'।।

इन श्लोकों का भाव है कि अहंवृत्ति कहाँ से उत्पन्न होती है, ऐसा विचार करते रहने पर मिथ्या अहं नाश को प्राप्त हो जाता है। यही आत्मचिंतन है। मिथ्या अहंकार के समाप्त होने पर शुद्ध सत् अहं रूप से स्फुरित होने लगता है। यही पूर्ण सत्, ब्रह्मतत्त्व या आत्मतत्व है।

शुद्ध अहं के होने से ही नकली अहं भी होता है, असली नोट के होने पर ही नकली नोट भी चलती है। अहं तो अमर है, छुद्र जीव सीमित अहं से बनता है। ज्ञानी का अहं असीम हो जाता है। तब, आवश्यकता न रहने पर, मन का लय अहं में ही हो जाता है। अहंकार को व्यापक कर देना ही जीवन की साधना है।

25. अपनी प्रारंभिक सफलताओं और देशविजय से सिकंदर को अहंकार और आत्ममोह हो गया। उसने देवरूप से अपनी पूजा करने का आदेश पारित किया। अरस्तू के परिवार के एक व्यक्ति ने इसका विरोध किया। विरोध से नाराज़ हो कर सिकंदर ने उसे फांसी की सजा सुना दिया। बाद में अरस्तू के बहुत अनुरोध पर क्षमा किया क्योंकि अरस्तू सिकंदर का गुरू था। वही सिकंदर भारत के पश्चिमी प्रदेशों में युद्ध करते करते थक गया। उसकी पीठ में घाव लग गया जो किसी योद्धा के लिए निंदनीय होता है। योद्धा के सामने घाव लगता है। पाठ पर घाव कायर को लगता है। जो कुछ हो सिकंदर वहां से ही

वापस चला गया और उसी घाव के कारण मर गया। इससे संदेश मिलता है कि उत्थान या पतन को महत्व न दे कर आधारभूत नैतिकता के साथ स्वधर्म पालन करना चाहिए।

एक और उदाहरण देखा जाए कि रामायण काल में नैतिकता की रक्षा शतप्रतिशत होती थी। जय पराजय को महत्व नहीं दिया जाता था। महाभारत के युद्ध में नैतिकता और सत्य को छोड़कर युद्ध जीतना स्पष्ट है। रामायण काल में रामराज्य की स्थापना हुई जबकि महाभारत युद्ध के बाद छत्तीस वर्ष तक जिंदा रहने का समय पांडवों और कृष्ण के लिए भी दुःखदायी ही रहा। अंत में अजेय लोग ही बुरी तरह पराजित हुए। युधिष्ठिर ने स्वीकार किया है कि पहले मरने वाले ही जीत गए और हम जीतने वाले हार गए हैं। जीवनकाल में ही पांडव और कृष्ण ने अपनी घोर पराजय को देखा।

नैतिकता छोड़ने पर जब बहुत शक्तिशाली लोगों की दुर्गति हो सकती है तो साधारण मनुष्यों को अधिक सावधान रहना चाहिए। जय पराजय की परवाह न करके सन्मार्ग को अपनाना श्रेयस्कर है। आज विद्यार्थियों, जातीय संगठनों, धनबल, बाहुबल, झूठे वादों तथा दिखावा के सहारे या भानुमति का कुनबा जोड़कर जीतना तो संभव है, किन्तु बाद का परिणाम भयंकर है। इससे समाज, प्रकृति तथा ईश्वर के अप्रसन्न होने पर कोई रक्षक नहीं मिलेगा।

इतिहास को देखकर यह विश्वास होता है कि पूर्व जन्म में संचित शक्ति(भाग्य) के कारण या इस जन्म में तपस्या से व्यक्ति की अप्रत्याशित उन्नति हो जाती है। नैतिकता के दृढ़ आधार के अभाव में शीघ्र ही या यथासमय पतन भी होना निश्चित है। 'क्षयान्ताः सर्वनिचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः'- वाल्मिकी की वाणी सर्वथा सत्य है।

अतः भविष्य को भी देखें, केवल वर्तमान को ही न देखें, यही संदेश है।

26. 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।'

ईशावास्योपनिषद के उपर्युक्त मंत्र में सत्यलोक तक जाने में सहायता हेतु पूषा देवता की प्रार्थना की गई है। सूर्यमंडल का भेदन करके ही सत्यलोक तक जाने का मार्ग बनता है। सूर्यमंडल का छिद्र जिससे हो कर मार्ग जाता है वह स्वर्णिम पात्र से आच्छादित रहता है। उस आच्छादन के हटने पर ही मंडल का भेदन करके सत्यलोक का मार्ग जाता है। अतः पूषा देवता की सहायता मांगी

गई है, जिससे आच्छादन हट सके। क्रममुक्ति में यही होता है। सद्योमुक्ति में मार्ग की आवश्यकता ही नहीं होती है- न हि तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ते- से यह सिद्ध है।

उपर्युक्त मंत्र तथा उसकी व्याख्या आध्यात्मिक साधना में सहायक है। वेद ही लोक तथा परलोक दोनों के लिए साधन प्रतिपादित करता है। अतः इस मंत्र का एक लौकिक (व्यावहारिक) अर्थ भी अभिधा से ही स्पष्ट है। मंत्र बताता है कि सत्य का ज्ञान होने में स्वर्णमय आवरण बाधक है। यह आवरण ही दूसरी भाषा में कामना एवं लोभ हैं। लोभी को सत्य का दर्शन संभव नहीं है। ईश्वर की कृपा से विवेकज्ञान होता है और उससे लोभ का निवारण होता है। तब सत्य का प्रत्यक्ष होता है। लोभ के निवारण के लिए ही यह प्रार्थना की गई है।

आज के समाजसेवक या राजनेताओं में स्वार्थ और लोभ के कारण सत्य को जानने की क्षमता नहीं रह गई है। पद या संगठन के मोह में सभी लोग अविश्वसनीय हो गए हैं। ऐसी स्थिति में महाभारत का श्लोक याद आता है-

'यत्र स्त्री यत्र कितवो बालोयत्रानुशासिता।
मज्जन्तितेअवशं राजन् नद्यामश्मप्लवेन इव।।'

अर्थात जहां स्त्री, बालक या धूर्त नेता(शासक) हों, वहां समाज पत्थर की नाव में बैङ्कर नदी पार करने वालों की तरह डूब जाता है। इस आपदा से बचने के लिए नैतिकता, सत्य, न्याय, विवेक तथा संस्कृति की रक्षा परम आवश्यक है। लोगों को दुराग्रह छोड़कर सत्य का दर्शन करने हेतु प्रेरित करना समाज की सेवा है तथा शासकों को इसका पालन करना अनिवार्य कर्तव्य है।

27. वैराग्य स्वभाव से संबंधित धन है। यह ज्ञान के सहारे पैदा हो कर ज्ञानवृद्धि में सहायक होता है। संतोष बुद्धि से संबंधित धन है, जो वैराग्य के अभाव में विवेक बुद्धि द्वारा उत्पन्न किया जाता है। वैराग्य पारमार्थिक साधना में सहायक होता है। संतोष लौकिक व्यवहार में सुखी बनाता है।

वैराग्य दुर्लभ है। उसके नाम पर मिथ्याचार से समाज पथभ्रष्ट हो सकता है। इसका फल प्रच्छन्न रहता है। अतः मिथ्या प्रदर्शन का अवसर बनता है। संतोष का फल प्रत्यक्ष होता है। अतः सामाजिक सेवा के लिए तथा व्यवहार में संतोष का सहारा लेना बड़ा कारगर है। अपने धन, स्त्री, पद, प्रतिष्ठा के विषय में संतोष रखने पर दुराचार और मिथ्याचार बंद हो सकता है। इससे तृष्णा का क्षय होता है और जीवन सुखी बनता है। महापुरुषों ने कहा है-

'यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखं।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।।'

अर्थात इस लोक में सम्पूर्ण कामनाओं की प्राप्ति या परलोक में स्वर्गसुख की प्राप्ति- दोनों तृष्णा के नाश से प्राप्त होने वाले सुख का अल्पांश भी नहीं हैं। समृद्धि नहीं, सुख में ही जीवन की सफलता है और अनंत सुख में पारलौकिक सिद्धि है। अतः सन्मार्ग पर चलते हुए अपने परिश्रम और योग्यता से जो मिल जाये उसमें संतोष करना हितकर है। इससे बहुत से सामाजिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान हो जाता है। ईश्वरीय न्याय में विश्वास रखने पर दुराचार करने का साहस नही हो सकता है। इससे भविष्य ठीक रहता है। वर्तमान ही नहीं भविष्य को देखकर व्यवहार करना व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों पहलुओं में श्रेयस्कर है।

28. भारत की हज़ारों वर्ष पुरानी संस्कृति और परंपराओं को मानने वाला हर व्यक्ति हिन्दू है। हिन्दू एक धर्म भी है, जिसमे अनेक सम्प्रदाय हैं। संप्रदायों में आपसी विरोध भी है, किन्तु संस्कृति की एकता के कारण सभी हिन्दू हैं। यह संस्कृति किसी समय एशिया महाद्वीप में व्याप्त थी, इस बात के ऐतिहासिक साक्ष्य महाभारत तथा पुराणों में मिलते हैं। अन्य देशों में अब भी हिन्दू संस्कृति और परंपराएं देखने को मिलती हैं।

बौद्ध, जैन, सिक्ख, आर्यसमाज जैसे धर्म भी हिन्दू की परिभाषा में आते हैं। विशिष्टता के कारण लोग इन्हें अलग मानने की भूल करते हैं। हिदुत्व में परिष्कार के लिए ही इनका आविर्भाव हुआ, अलगाव के लिए नहीं।

यह संस्कृति दिनोदिन विपन्न होती जा रही है। इसकी सीमाएं संकुचित होती जा रही हैं तथा स्वरूप विकृत हो रहा है। भारतभूमि पर भी यह मृतप्राय है, बाहर तो उपेक्षित ही है। महाभारत के युद्ध से आर्य जाति की प्रगति रुक गई। बौद्धों के आगमन से आर्यों की आक्रामकता समाप्त हो गई। दिग्विजय करने वाले हिन्दू अपनी सीमा सुरक्षा में भी असफल होने लगे। धर्मिन पतन से रोकने का उपाय तो शंकराचार्य तथा कुछ और युगपुरुषों ने किया किन्तु राजनैतिक पतन नहीं रुक सका। समाज के कमजोर होने से, हमारी कमजोरियों का फायदा ले कर मुग़ल तथा अंग्रेज शासकों ने इस संस्कृति को क्षति पहुंचाया। भक्ति आंदोलन ने समाज को अंतर्मुखी बना दिया। फिर भी धार्मिक नींव के सुदृढ़ होने के कारण लोग किसी तरह अपनी संस्कृति को बचाये रखे।

स्वतंत्रता के बाद साम्प्रदायिक तुष्टिकरण और यूरोप तथा अमेरिका के प्रभाव से ग्रस्त हमारे देशवासी ही इस संस्कृति को समाप्त करने में लगे हैं। तथाकथित हिंदूवादी भी वास्तव में हिन्दू नहीं हैं। ये भी अवसरवादी संगठन बनाये हैं। मंदिर और धर्म परिवर्तन ही इनका मुद्दा है। मूल पर उनकी दृष्टि ही नहीं है।

ईस संस्कृति का मूल हमारे धर्मशास्त्रों में एवं परंपराओं में है। इनकी रक्षा करना ही हिंदुत्व की रक्षा है। हिन्दू संस्कृति इस समय इतनी असहाय हो गई है कि इसके समाप्त होने का भय उत्पन्न हो गया है।

पशु-पक्षी, पेड़-पौधे तथा कुछ नस्ल के मनुष्यों की प्रजाति को सर्वथा समाप्त होने से रोकने के उपाय सर्वत्र किये जा रहे हैं। हिन्दू संस्कृति का महत्व इन सब से तो बहुत अधिक है। जाति और धर्म को सर्वथा समाप्त करना genocide की तरह है। यह अपराध है। अपराध करने में हिन्दू स्वयं सहायक हों तो आश्चर्यजनक लगता है।

हमारी संस्कृति शास्त्र और परंपरा के पैरों पर खड़ी रही है। इसी संस्कृति में रामराज्य की स्थापना हुई थी तथा कुत्ते को भी न्याय मिल था। अन्यत्र ऐसा उदाहरण नहीं है। यह संस्कृति शीर्षासन में या लेटकर जिंदा नहीं रह सकती है। विदेशियों की नकल न किया जाय। हिन्दू संस्कृति की संजीवनी शक्ति ने ही विदेशियों को भगाकर अपना राज्य स्थापित किया है। अब स्वयं विषपान करके आत्महत्या उचित नहीं है।

संस्कृति के पोषक, नैतिक तथा स्वाभिमानी लोगों के द्वारा नेतृत्व लेने का प्रयास वास्तविक स्वतंत्रता की नई लड़ाई है। समाज के सबल होने पर ही यह संभव है। स्वाभिमान को जागृत करने और अच्छे-बुरे का ज्ञान करना प्रारंभिक कार्य है।

'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोध'

यह वेदवाणी हमें जगने, उठने तथा श्रेष्ठ पुरुषों से प्रेरणा ले कर अपना लक्ष्य प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।

29. डाइग्नीज एक वीतराग दार्शनिक था। एक दिन वह एकांत में बैठा धूप ले रहा था। विजेता सिकंदर उससे मिलने के लिए गया। सिकंदर को अपने पराक्रम पर अभिमान था। डाइग्नीज के सामने पहुंच कर सिकंदर को अपना व्यक्तित्व महत्तर स्थापित करने की चित्तवृत्ति उत्पन्न हो गई। उसने पूछा कि,'मुझ

सिकंदर से आप क्या चाहते हैं?' डाइग्नीज ने अन्यमनस्क भाव से कहा कि,'हमारी धूप छोड़ दें'। सिकंदर का अहंकार आहत हो गया। डाइग्नीज के स्वभाव से टकराने पर वास्तविक सफलता पर आधारित होने पर भी सिकंदर के अंदर का अभिमान हार गया। वह यह कहता हुआ चला गया कि यदि वह सिकंदर न होता डाइग्नीज होना चाहता। स्वाभिमान अपराजेय होता है। वह वस्तु के आधार पर नहीं, व्यक्ति के स्वभाव पर आधारित होता है।

स्वभाव जिस वस्तु/मूल्य को अपना मान लेता वह मूल्य ही स्वाभिमान का स्वरूप हो जाता है। उसके लिए जीना-मरना, संपत्ति-विपत्ति आदि की परवाह नहीं रह जाती है। इसी कारण महाराष्ट्र के ब्राह्मणों ने स्वतंत्रता के लिए बहुत संख्या में बलिदान दिया। मन्मथनाथ गुप्त ने यहां तक लिखा है कि ब्राह्मण शब्द ही क्रांतिकारी का पर्याय बन गया था। यह ब्राह्मणत्व इस देश का स्वभाव है, अतः, अब भी उपलब्ध है। बड़े बड़े शूरवीर, मनीषी, दानवीर, सत्यवीर, धर्मवीर स्वाभिमान के लिए ही महान कार्य करके अमर हो गया हैं।

भारतीय संस्कृति की रक्षा और सामाजिक चेतना जागृत करने के लिए स्वाभिमान को जागृत करना पर्याप्त है। अपनी प्राचीन संस्कृति और देश के साथ स्व का संबंध हो जाने पर समाज के सभी लोग एकमत से सन्मार्ग पर चल पड़ेंगे। तब लोभ और भय का त्याग करना तथा जीवन के उच्च मूल्यों को महत्व देना आदि सद्गुण समाज को मिथ्या अहंकार, पाखंड, अनीति आदि की महामारी से मुक्त कर देंगे।

'जा को कछू ना चाहिए, सो शाहन के शाह'- जैसे त्याग की शिक्षा देने वाले तथा 'वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे' जैसे मनुष्यत्व की शिक्षा देने वाले वाक्यों से प्रेरणा मिलती है।

'स जातो येन जातेन् याति वंशसमुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

अर्थात

स्वाभिमानपूर्वक जीने और मरने दोनों का महत्व है।

30. वेदः स्मृतिः सदाचारःस्वस्य च प्रियमात्मनः
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्।।

(मनुस्मृति)

अर्थात धर्म को जानने तथा उसका समयानुरूप निर्णय करने के लिए वेद, स्मृति, महापुरुषों का सदाचार एवं स्वभाव के अनुकूल प्रिय होना, यह चार लक्षण भगवान मनु ने बताया है। इनमें से प्रथम तीन शास्त्र से निर्धारित हैं। उनमे परिवर्तन संभव नहीं है। चतुर्थ लक्षण व्यक्तिनिष्ठ है। इसी लक्षण का विवेचन उपयोगी है।

'स्वस्य च प्रियमात्मनः' का अर्थ ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि जो अपने को पसंद है, मन जिसको चाहे वही धर्म है। यह तात्पर्य निकालना धर्म की जगह अधर्म को ही लक्षण बता देगा तब प्रथम तीनों लक्षण व्यर्थ हो जाएंगे। सही तात्पर्य निकालने के लिए श्लोक में 'स्व' शब्द का बड़ा महत्व है। पहले कहे गए तीनों लक्षणों के साथ ही चौथा लक्षण उपयोगी हो सकता है। अर्थात प्रथम तीनों लक्षणों का विरोध न करते हुए अपने स्वभाव के अनुसार मार्ग निर्धारण करना धर्म है। यही अभीष्ट तात्पर्य है। उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया जा रहा है-

महर्षि जमदग्नि की हत्या सहस्त्रबाहु ने कर दिया था। जमदग्नि के चार पुत्र थे। सबसे छोटे पुत्र परशुराम थे। प्रथम तीनों भाइयों ने अपने ब्राह्मण धर्म पर स्थिर होने के कारण अपराध को क्षमा कर दिया। किन्तु परशुराम क्षमा नहीं कर सके। पराक्रम में कोई भाई कम नहीं था। परशुराम ने पराक्रम का सहारा ले कर सहस्त्रबाहु का वध करके पिता की हत्या का बदला लिया। इस ।ाटना में पहले तीनों भाई तथा परशुराम के आचरण में विरोध होने पर भी दोनों तरह के लोग धर्मनिष्ठ माने जाते हैं। स्वभाव के अनुसार मार्ग अनुसरण करना तथा धर्म के प्रथम तीन लक्षणों से अविरोध होना दोनों स्पष्ट हैं। 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' का अर्थ यही है।

अनेक तरह की नीतियों का उपदेश शास्त्रों में मिलता है। ये नीतियां एक दूसरे की विरोधी होने पर भी सभी धर्मसम्मत मानी जाती हैं। उदाहरणार्थ कुछ नीतियां विचारणीय हैं-

1. यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यः तस्मिन तथा वर्तितव्यं स धर्मः - जैसा व्यवहार कोई करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना उचित है।
2. शान्तिखड्ग करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति - अर्थात दुर्जन से भी क्षमाभाव रखना धर्म है।
3. क्षमा बड़े को चाहिए, छोटे को उत्पात - यह भी आचरण का एक आदर्श है।

4. जौ नहीं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा।। - यह भी धर्म का विधान है।
5. धनसंचय और त्याग, गृहस्थाश्रम और सन्यास, शरीर का महत्व तथा शरीर के प्रति अनादर आदि सभी तरह की शिक्षाएँ समय समय पर शास्त्रों में मिलती है।

इस तरह के सैकड़ों वाक्य हैं जो परस्पर विरोधी होते हुए भी धर्मसम्मत हैं। इन सबका समाधान धर्म के चतुर्थ लक्षण की व्याख्या से हो जाता है।

'सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढ़ः परपप्रत्ययनेय बुध्दिः।' स्वभाव के अनुसार कार्य करने पर पश्चात्ताप नहीं होता है। दान दे कर तथा न देने पर दोनों हालत में पश्चाताप हो सकता है। अपने स्वभाव के अनुसार निर्णय लेना स्वधर्म है। इसीलिए स्वधर्म के पालन को बहुत महत्व दिया गया है। स्वधर्म का महत्व 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' द्वारा प्रतिपादित लक्षण के आधार पर भी सिद्ध होता है।

धर्म के अनुकूल होने पर काम भी प्रशंसनीय है। 'धर्माविरुद्धो लोकेस्मिन कामोस्मि भरतर्षभ'- (गीता)। पुत्रेष्णा, वित्तेष्णा और लोकेष्णा तीन तरह की कामनाएं होती हैं। सभी धर्मसम्मत होने पर उपास्य हैं। लोकेष्णा तो धर्मसम्मत होती ही है। अतः लोकहित में कार्य करने पर कोई भय नहीं रहता है। इसमें अहंकार न हो जाये इसके प्रति सावधानी रखनी पड़ती है। कर्मयोग की तरह लोकनीति की स्थापना में लगना इस समय धर्मसम्मत है।

31. राष्ट्र और देश

देश और राष्ट्र दोनों ही शब्द सामान्यतया एक ही अर्थ में प्रयोग किये जाते हैं, किन्तु सही अर्थों में बड़ा अंतर है। देशभक्ति या राष्ट्रीय-भावना दोनों विकास, शान्ति एवं सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं। यह दोनों समाज की संपत्ति है तथा सामाजिक रचना के लिए महत्वपूर्ण हैं। अतः इनका सही स्वरूप जानना तथा स्थापित करना भी समाज के लिए उपयोगी है।

देश शब्द का अर्थ भू-भाग, भावनात्मक लगाव और जन्मस्थल से है। यह भौगोलिक सीमा से सम्बद्ध होता है।

राष्ट्र शब्द का अर्थ ऐतिहासिक सीमा में समझा जाता है। इसकी पहचान भाषा, संस्कृति, परम्परा, प्रजाति की एकता(सन्निकटता) के कारण विशिष्ट कोटि के व्यक्तियों की आबादी से होता है।

देश में भूभाग महत्वपूर्ण है, राष्ट्र में जनता महत्वपूर्ण है। चाणक्य ने इन दोनों के लिए एक ही शब्द प्रयोग किया है। अर्थशास्त्र में दोनों का समावेश है।

शासन सत्ता के संगठन को राज्य कहते हैं। देश और राष्ट्र दोनों की सुरक्षा राज्य द्वारा होती है। किंतु राज्य तभी सफल होता है, जब दोनों अवयव सुदृढ़ हों। नागरिकता राज्य की ही होती है। समस्त समाज इसका क्षेत्र है।

राजनीति शब्द का अर्थ ही है - शुभ मार्ग, अच्छा रास्ता या राजधर्म। सुभत्व से विमुख होकर या अनीति का सहारा लेने पर राजनीति बेमानी शब्द है।

उपर्युक्त विवेचन से आदर्श स्थिति को स्पष्ट कर दिया गया है। इसको कार्यान्वित करने वाले देश विकास के साथ सशक्त बने हुए हैं। अमेरिका, ब्रिटेन आदि यूरोपीय देश तथा चीन, जापान, रूस के सशक्त होने का कारण राष्ट्रीयता, देशभक्ति तथा राजनीति से युक्त राजसत्ता का होना ही है। भारत में इन सभी अवयवों का विकृत रूप उपलब्ध है। अतः समाज असंतुष्ट तथा असुरक्षित है। यहाँ सारी बातें विश्वगुरु स्तर की की जाती हैं, किन्तु वास्तविकता एकदम विपरीत है।

स्वतंत्रता के पहले प्रबुद्ध लोग असंतोष तथा अन्याय का अनुभव करते थे। सामान्य जनता गरीबी के बावजूद प्रेम, सौहार्द्र और संतोष के साथ जीवन बिताती थी। धर्म के सिद्धांतों का राज्य उनके ऊपर रहता था। स्वतंत्रता के बाद देश, राष्ट्र, राज्य, राजनीति और समाज की स्थिति को देखें तो निराशाजनक ही नहीं भयावह लगने लगी है।

देश का विभाजन हो गया, कश्मीर भी अधिकांश चला गया और युद्धक्षेत्र बना हुआ है। चीन हमारी सीमा को दबाए बैङ्ग गया है। यह देश की दुर्दशा है।

राष्ट्र में भाषा, जाति, सम्प्रदाय, संस्कृति सभी विवाद का कारण बने हैं। राष्ट्रीय भावना का अभाव है।

राज्य और शासन सत्ता आरम्भ से ही विदेशी संस्कृति और आदर्शों के पोषकों के साथ चली गई। कोई इसे स्वदेशी या राष्ट्रीय नहीं बना पा रहा है। इसमें अराजक तत्वों का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

राजनीति दूषित हो गई है। जाति, सम्प्रदाय, लिंग भेद से असमानता, आरक्षण आदि तथा विवाहादि सामाजिक परंपरा, वरासत तथा व्यवहार संबंधी कानूनों से भारतीय संस्कृति को एकदम यूरोपीय बनाने का प्रयास हो रहा है। खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा सब आपत्तिजनक होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में समाज में सुख-शांति की कल्पना नहीं की जा सकती है। सभी अवयवों में विकार का फल समाज को ही भोगना पड़ेगा। कोई बेरोजगार है तो कोई तीन हजार रुपये में काम चला रहा है। कोई तीस हजार तो कोई तीस लाख और करोड़ों कमा रहा है। सामाजिक विषमता चरम पर है।

इस परिस्थिति से निपटने का एक ही रास्ता है। समाज को जाग्रत करना तथा उसे मूक़द्रष्टा न रहकर राज्य सत्ता का नियामक बनाना ही उपाय है। नैतिक सामाजिक संगठन के माध्यम से यह कार्य पूरा हो सकेगा। नैतिकता, राष्ट्रीयता और देश-प्रेम के संचार से संजीवनी शक्ति मिलेगी।

हम लोग शुक्र, कौटिल्य, कामन्दक आदि को तो भूल ही गए हैं, रामायण और महाभारत की ओर भी नहीं देखते हैं। सारी राजनीति और समाज की व्यवस्था को तुलसीदास ने कितना सूक्षम रूप में लिख दिया है, राम ने भरत से कहा-

‘तुम मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहुँ प्रजा पुहुमि रजधानी।।’

इस चौपाई में प्रजा (राष्ट्र), पुहुमि (देश), रजधानी (राज्यसत्ता) तीनों का महत्व, वृद्धसेवा तथा शासक का मूलकर्तव्य संक्षेप में समझा दिया गया है। स्व कर्तव्यों को न करने वाला शासक निकम्मा है। स्वधर्म छोड़कर परधर्म में दखल देना शासन के लिए भी अहितकर है। इन तीन के अलावा सब कार्य समाज की सहभागिता से ही होना उचित है।

संस्कृति और सभ्यता किसी भी देश की स्वाभाविक देन होती है। जलवायु की तरह देश का ही प्रभाव इनमें भी रहता है। देश का भी डी.एन.ए. होता है, जो विशिष्ट पहचान कही जाती है। बहुत सी संस्कृतियाँ एवं सभ्यताएं लुप्त हो गईं, जिसका एक कारण यह भी था कि उन पर बाह्य प्रभाव इतना प्रबल हो गया कि स्वरुप गायब हो गया। इस समय अपने देश की संस्कृति पर भी बाह्य प्रभाव बढ़ता जा रहा है। यह स्वतंत्रता के बाद आरम्भ हुआ है। अब भी हम सजग नहीं हुए तो भारतीय संस्कृति भी लुप्त हो सकती है। हम स्वयं बाह्य संस्कृति को अपनाते जा रहे हैं, जो अशुभ का लक्षण है।

अपनी पहचान को बनाये रखने के लिए विकास को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित करना होगा। समाज तथा राष्ट्र की मूल पहचान बनाये रखना सर्वोपरि महत्त्व रखता है। इस पुस्तक में कुछ विषयों पर विचार दिए गए हैं। इन विचारों को प्रबुद्ध लोग अधिक विकसित और विस्तृत कर सकते हैं। संस्कृति हमारे शास्त्रों के आधार पर ही सुरक्षित रहेगी। शास्त्र ही नियामक तत्त्व हैं। इसी आधार पर संस्कार, शिक्षा, स्वधर्म तथा राजधर्म को विकसित करना आवश्यक है। समय तथा वैश्विक प्रभाव को भी समन्वित करते हुए हम अपनी निजी विशेषता के आधार पर विकास करेंगे तो सुरक्षित रहेंगे। समाज और राष्ट्र की सेवा में सांस्कृतिक स्वतंत्रता हेतु जनांदोलन समय की प्रबल मांग है। शुभ लक्षण है कि कुछ लोग सामाजिक संगठन में सचेष्ट हैं। नैतिक राजनैतिक संगठन भी समर्थ लोगों द्वारा अपेक्षित है। एतदर्थ प्रेरणा हेतु यह कृति है।